स्थापना वर्ष:१९४२

नूतन निष्काम पत्रिका

- वर्ष-8
- अंक-12
- मुम्बई
- दिसम्बर 2017
- मूल्य-रु.9/-

आर्य समाज सांताक्रुज़ के ७४वें वार्षिक महोत्सव पर निम्नलिखित विद्वानों को सम्मानित किया जायेगा ।

आचार्य पं. वेदप्रकाश श्रोत्रिय जी को
''वेदांग पुरस्कार''
से सम्मानित किया जायेगा ।

डॉ. शारदा जी को
''श्रीमती प्रेमलता सहगल युवा महिला पुरस्कार''
से सम्मानित किया जायेगा ।

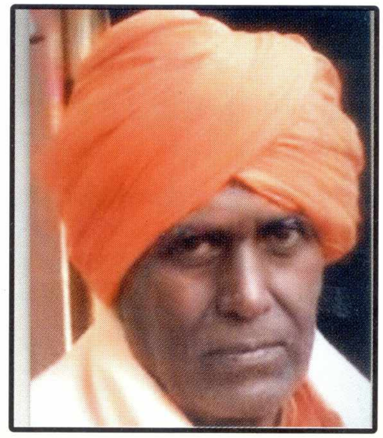

स्वामी सौम्यानन्द जी को
''श्री राजकुमार कोहली वरिष्ठ विद्वान पुरस्कार''
से सम्मानित किया जायेगा।

डॉ. विनोदचन्द्र विद्यालंकार हरिद्वार को
''श्री मेघजी भाई आर्य साहित्य पुरस्कार''
से सम्मानित किया जायेगा ।

आचार्य बुद्धदेव शास्त्रीजी को
''आचार्य भद्रसेन युवा वैदिक विद्वान पुरस्कार''
से सम्मानित किया जायेगा ।

आचार्य सुदर्शन देव, उड़ीसा को
''पं. युधिष्ठिर मीमांसक पुरस्कार''
से सम्मानित किया जायेगा ।

किनके हृदय में प्रभु की ज्योति का प्रकाश होता है-

आचार्य भद्रसेन

१. योगी के हृदय में ही प्रभु के दर्शन होते हैं–

जो सत्य भाव (सच्चे हृदय) से धर्म का अनुष्ठान कर, योग का अभ्यास करते हैं, उनके ही हृदय में परमात्मा प्रकाशित होता है। (ऋ. ७।३८।२)

२. ब्रह्म को कौन जान सकता है–

जो मनुष्य ब्रह्मचर्य आदि व्रत, सदाचार, विद्या, योगाभ्यास, धर्म का अनुष्ठान, सत्सङ्ग और पुरुषार्थ से रहित हैं वे जन अज्ञान-रूप अन्धकार से दबे हुए होने के कारण ब्रह्म को नहीं जान सकते। और जो सर्वान्तर्यामी, सबका नियन्ता और सर्वत्र व्याप्त है, उसको जानने के लिए जिनकी आत्मा पवित्र है वे ही योग्य होते हैं। अन्य नहीं। (यजु. १७/३१)

३. शरीर की पुष्टि तथा आत्मा और अन्त:करण की शुद्धि प्रभु प्राप्ति का साधन है–

हे मनुष्यो! तुम लोग धर्म का आचरण, वेद और योग के अभ्यास, तथा सत्सङ्ग आदि कर्मों से शरीर की पुष्टि और आत्मा तथा अन्त:करण की शुद्धि को सम्पादन कर सर्वत्र अभिव्याप्त परमात्मा को प्राप्त होके सदा सुखी होवो। (यजु. ३२।११)

४. परमात्मा किसे मिलते हैं–

वह परमात्मा अधर्मात्मा, अविद्वान्, विचार-शून्य, अजितेन्द्रिय, ईश्वर-भक्ति रहित जनों से बहुत दूर है। अर्थात् वे कोटि-कोटि वर्षों तक भी उसको नहीं प्राप्त होते। और वे तब तक जन्म-मरण आदि दु:ख सागर में भटकते फिरते हैं कि जब तक उस (परमेश्वर) को प्राप्त नहीं होते। किन्तु वह सत्यवादी, सत्यकारी, सत्यमानी, जितेन्द्रिय, सर्वजनोपकारक, विद्वान्, विचारशील पुरुषों के अत्यन्त निकट हैं। वे सबके आत्माओं में अन्तर्यामीरूप से व्यापक होकर पूर्ण हो रहे हैं। वह (प्रभु) आत्मा का भी आत्मा है। उससे तिल मात्र भी खाली नहीं है, क्योंकि वह अखण्डैक रस होकर सब में व्यापक हो रहा है। उसी को जानने से सुख और मुक्ति मिलती है। अन्यथा नहीं। (आ. वि.)

५. हम उस प्रभु को क्यों नहीं जानते–

हे जीवों! जो परमात्मा इस सब भुवनों को रचनेवाला विश्वकर्मा है, उसको तुम लोग नहीं जानते, क्योंकि तुम अविद्या से अत्यन्त आवृत्त होकर मिथ्यावाद और नास्तिकपन में फँसकर मिथ्या बकवाद करते फिरते हो। (याद रखो) इसमें तुमको दु:ख ही मिलेगा, सुख कदापि नहीं। तुम लोग केवल स्वार्थ साधक (बनकर) शरीर पोषण मात्र में ही प्रवृत्त हो रहे हो, और केवल विषय भोगों के लिए ही अवैदिक कर्म करने में प्रवृत्त हो रहे हो। और जिसने सब भुवन रचे हैं, उस सर्वशक्तिमान् न्यायकारी परमात्मा से उल्टे चलते हो इसीलिए उस प्रभु को तुम नहीं जान सकते। (आ.वि.)

६. भगवान किसको अपने आनन्द से पूर्ण करते हैं–

जो सब जगत् का पिता है, वही अपने उपासकों को ज्ञान और आनन्द आदि से परिपूर्ण कर देता है। परन्तु जो मनुष्य सच्ची प्रेम-भक्ति से परमेश्वर की उपासना करेंगे, उन्ही उपासकों को परम कृपामय अन्तर्यामी परमेश्वर मोक्ष सुख देके सदा के लिए आनन्दयुक्त कर देंगे। (ऋ. भा.भू., उपासना प्र.)

७. परमेश्वर की प्राप्ति किसे नहीं होती–

यह उपासना-योग दुष्ट मनुष्य को कभी सिद्ध नहीं होता। क्योंकि जब तक मनुष्य दुष्ट कामों से अलग होकर अपने मन को शान्त और आत्मा को पुरूषार्थी नहीं बनाता, तथा भीतर के व्यवहारों को शुद्ध नहीं करता, तब तक कितना ही पढ़े अथवा सुने, उसको परमेश्वर की प्राप्ति कभी नहीं हो सकती।

(ऋ.भा.भू., उपा. प्र.)

८.परमात्मा के राज्य में कौन प्रवेश करते हैं–

जो मनुष्य धर्माचरण से परमेश्वर और उसकी आज्ञा (पालन) में अत्यन्त प्रेम करके अरण्य अर्थात् शुद्ध हृदयरूपी वन में स्थिरता के साथ निवास करते हैं, और जो लोग अधर्म के छोड़ने और धर्म के करने में दृढ़ तथा वेदादि सत्य विद्याओं के विद्वान् हैं... वे मनुष्य ही प्राणद्वार से परमेश्वर के सत्य राज्य में प्रवेश करके, और सब दोषों से छूट के परमानन्द मोक्ष को प्राप्त होते हैं।

(ऋ.भा.भू.उ.प्र.)

९. परमात्मा ज्योति का प्रकाश कहाँ पर होता है–

कण्ठ के नीचे दोनों स्तनों के बीच में और उदर के ऊपर जो हृदय देश है। जिसको ब्रह्मपुर अर्थात् परमेश्वर का नगर भी कहते हैं, उसके बीज में जो सर्वशक्तिमान् परमात्मा बाहर भीतर एक रस होकर रम रहा है। वह आनन्दस्वरूप परमेश्वर उसी प्रकाशमय स्थान के बीच में खोज करने से मिल जाता है। दूसरा उसके मिलने का कोई उत्तम स्थान या मार्ग नहीं है।

(ऋ.भा.भू., उ.प्र.)

१०. पुरुषार्थी पुरुष को परमेश्वर शीघ्र प्राप्त होता है–

परमेश्वर अत्यन्त दयालु हैं। अत: जो जीव उसकी प्राप्ति के लिए तन, मन, धन से श्रद्धापूर्वक पुरुषार्थ करता है, परमात्मा उनको शीघ्र ही प्राप्त होता है। (स. प्र. प्र. सं. ९ समु.)

❑❑❑

आर्य समाज सांताक्रुज़, मुम्बई का मासिक मुखपत्र
वर्ष : ८ अंक १२ (दिसम्बर-२०१७)

- दयानंदाब्द : १९४, विक्रम सम्वत् : २०७४
- सृष्टि सम्वत् : १,९६,०८,५३,११८

प्रबन्ध संपादक : चन्द्रगुप्त आर्य
संपादक : संगीत आर्य
सह संपादक : संदीप आर्य
कार्यकारी संपादक : विनोद कुमार शास्त्री
लालचन्द आर्य, रमेश सिंह आर्य,
यशबाला गुप्ता.

विज्ञापन की दरें : शुल्क

- पूरा पृष्ठ : रु. ३,०००/- • एक प्रति : रु. ९/-
- १/२ पृष्ठ : रु. २,०००/- • वार्षिक : रु. १००/-
- १/४ पृष्ठ : रु. १,५००/- • आजीवन : रु. १०००/-
- विशेषांक की दरें भिन्न होंगी ।

वर्गीकृत विज्ञापन

रु. १०/- प्रति शब्द, न्यूनतम रु. ५००/-

चैक/डीडी/मनी आर्डर आदि 'आर्य समाज सान्ताक्रुज' के नाम से ही भेजें, मुंबई के बाहर के चैक न भेजे। विज्ञापन सामग्री १० तारीख तक भेजें। **'नूतन निष्काम पत्रिका'** का मुद्रण ऑफसेट विधि से होता है।

पता : आर्य समाज सांताक्रुज़
(विठ्ठलभाई पटेल मार्ग) लिंकिंग रोड, सांताक्रुज़ (प.),
मुंबई -५४. फोन : २६६० २८००, २६६० २०७५

अनुक्रमणिका	पृष्ठ सं.
किनके हृदय में प्रभु की ज्योति का प्रकाश...	२
सम्पादकीय	३-४
अमर संन्यासी श्रद्धानन्द	५-६
नारी उत्थान महर्षि दयानन्द	७
उसका पार कोई नहीं पा सकता	८
अध्यात्मिक उन्नति	९-१०
बढायें - ईश्वर से निकटता	११-१२
पुरस्कारों का राष्ट्रीय स्वरूप	१२
लघु-कथा	१३-१४
सभी के साथ प्रेम तथा सहानुभूति	१५-१६

सम्पादकीय

विवाह और आर्य समाज

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने भ्रमित आर्य जाति को (तात्पर्य भ्रमित वैदिक धर्मियों को) पुनः वैदिक जीवन पद्धति जीने का मार्ग दिखाया। वैदिक पद्धति के अनुरूप विवाह के संबंध में सत्यार्थ प्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में वर्णन किया है। आईये ! कुछ अंश देखें जो विवाह के संबंध में हैं। शुरूवात में ही मनुस्मृति से संबंधित वर्णन को रखा है जिसका अनुवाद क़हता है कि १) जब यथावत् ब्रह्मचर्य आचार्यानुकूल वर्त्तकर, धर्म से चारों वेद, तीन, दो वा एक वेद को सांगोपांग पढ़के जिसका ब्रह्मचर्य खण्डित न हुआ हो, वह पुरूष वा स्त्री गृहाश्रम में प्रवेश करे।। २) जो यथावत् स्वधर्म अर्थात् जो आचार्य और शिष्य का है, उससे युक्त पिता, जनक वा अध्यापक से ब्रह्मदाय अर्थात् विद्यारूप भाग का ग्रहण, माला का धारण करनेवाला, अपने पलंग में बैठे हुए आचार्य को प्रथम गोदान से सत्कार करे। वैसे लक्षणयुक्त विद्यार्थी को भी कन्या का पिता गो देके सत्कृत करे। ३) गुरू की आज्ञा ले, स्नान कर, गुरूकुल से अनुक्रमपूर्वक आके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अपने वर्णानुकूल सुन्दर लक्षणयुक्त कन्या से विवाह करे। ४) जो कन्या माता के कुल की छः पीढ़ियों में न हो और पिता के गोत्र की न हो, उस कन्या से विवाह करना उचित है।

तत्पश्चात् कन्या को दुहिता क्यों क़हा है इसका वर्णन किया है। दुहिता कन्या का विवाह दूर देश में होना हितचारी है। महर्षि ने आगे लिखा है कि सोलहवें वर्ष से लेके चौबीसवें वर्ष तक कन्या और २५ वर्ष से लेके ४८ वर्ष तक पुरूष का विवाह समय उत्तम है। फिर इसमें आगे वर्णन है। एक जगह महर्षि ने लिखा है कि लड़का लडकी के आधीन विवाह होना उत्तम है। जो माता पिता विवाह करना कभी विचारें तो भी लड़का लड़की की प्रसन्नता के बिना न होना चाहिए। फिर आगे लिखा है कि जब से यह ब्रह्मचर्य से विद्या का न पढना, बाल्यावस्था में पराधीन अर्थात् माता पिता के आधीन विवाह होने लगा तब से क्रमशः आर्यावर्त देश की हानि ही होती चली आयी है। इससे इस दुष्ट कार्य को छोड़े सज्जन लोग पूर्वोक्त प्रकार से स्वयंवर विवाह किया करें। सो विवाह वर्णानुक्रम से करें और वर्णव्यवस्था गुण कर्म के आधीन होनी चाहिए। आगे महर्षि ने प्रश्न रखा कि क्या जिसके माता पिता ब्राह्मण हों, वह ब्राह्मणी ब्राह्मण होते हैं और जिसके माता पिता अन्य वर्णस्थ हो, वह कभी ब्राह्मण हो सकता है। इसके उत्तर में महर्षि ने लिखा है कि हां, बहुत से हो गये, होते हैं और होंगे भी। जैसे छान्दोग्य उपनिषद् में जाबाल ऋषि अज्ञातकुल, महाभारत में विश्वामित्र क्षत्रिय वर्ण, मातंगड ऋषि चाण्डाल कुल से ब्राह्मण हो गये थे। अब भी जो उत्तम विद्या

स्वभाववाला है, वही ब्राह्मण के योग्य और मूर्ख शूद्र के योग्य होता है, और वैसा ही आगे भी होगा। इसी विषय को समझाते हुए महर्षि ने आगे लिखा है कि जो कोई रज वीर्य्य के योग से वर्णाश्रम माने और गुणकर्मों के योग से न माने, तो उससे पूछना चाहिए कि जो कोई अपने वर्ण को छोड़ नीच, अन्त्यज अथवा कृश्चिन, मुसलमान हो गया हो, उसको ब्राह्मण क्यों नहीं गिनते ? यहाँ यही कहोगे कि उसने ब्राह्मण के कर्म छोड़ दिये, इसलिए वह ब्राह्मण नहीं है। इससे यह भी सिद्ध होता है जो ब्राह्मणादि उत्तम कर्म करते हैं, वे ही ब्राह्मणादि और जो नीच भी उत्तम वर्ण के गुण कर्म स्वभाववाला होवे, तो उसको भी उत्तम वर्ण में और जो उत्तम वर्णस्थ होके नीच कर्म करे तो उसको नीच वर्ण में गिनना अवश्य चाहिए। आगे एक जगह लिखा है कि जो शुद्रकुल में उत्पन्न होके ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के सदृश गुण, कर्म, स्वभाव वाला हो, तो वह शूद्र ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हो जाये। वैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के कुल में उत्पन्न हुये शूद्र के सदृश हों, तो शूद्र हो जायें। वैसे ही क्षत्रिय, वैश्य के कुल में उत्पन्न होके ब्राह्मण वा शुद्र के समान होने से, ब्राह्मण और शूद्र भी हो जाते हैं। अर्थात् चारों वर्णों में जिसजिस वर्ण के सदृश जोजो पुरूष वा स्त्री हो, वहवह उसी वर्ण में गिनी जावे। वैसे अधर्माचरण से पूर्वपूर्व अर्थात् उत्तम वर्णमाला मनुष्य अपने से नीचेवाले वर्णों को प्राप्त होता है और उसी वर्ण में गिना जावे। जैसे पुरूष जिसजिस वर्ण के योग्य होता है, वैसे ही स्त्रियों की भी व्यवस्था समझनी चाहिए। इससे क्या सिद्ध हुआ कि इस प्रकार होने से सब वर्ण अपनेअपने गुण, कर्म, स्वभावयुक्त होकर शुद्धता के साथ रहते हैं, अर्थात् ब्राह्मणकुल में कोई क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के सदृश न रहे और क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र वर्ण भी शुद्ध रहते हैं। वर्णसंकरता प्राप्त न होगी। इससे किसी वर्ण की निन्दा वा अयोग्यता भी न होगी। जो वर्णन हमें आज के संदर्भ में समझना है वो ये है.कि विवाह गुणकर्मस्वाभानुसार होने चाहिए और इसे स्पष्ट करने के लिये वर्णों के गुण और कर्म भी लिखे।

गुण कर्म स्वभावानुसार समान वर्ण में विवाह को महर्षि जी ने वैदिक प्रतिपादित किया है और यह पवित्र संस्कार आचार्य व माता पिता के सानिध्य में आशीर्वाद लेते हुए संपन्न कराने का विधान लिखा है। संस्कार विधि में भी महर्षि ने लिखा है कि विवाह उसे कहते हैं कि जो पूर्ण ब्रह्मचर्यव्रत द्वारा विद्या बल को प्राप्त तथा सब प्रकार से शुभ गुण कर्म स्वभावों में तुल्य, परम्परा प्रीतियुक्त होके निम्नलिखित प्रमाणे सन्तानोत्पत्ति और अपने अपने वर्णाश्रम के अनुकूल उत्तम कर्म करने के लिए स्त्री और पुरूष का सम्बन्ध होता है। संस्कार विधि की क्रिया भी, माता, पिता, भाई की उपस्थिति में कही गयी है।

आर्य समाज की स्थापना के पश्चात् आर्य समाजों में विवाह संस्कार होने लगे। विवाह संस्कार, संस्कार विधि के अनुरूप हो रहे है यहां तक तो ठीक है किन्तु महर्षि के गुण कर्म स्वभावनुसार व गुण कर्म स्वभावानुसार पोषित वर्ण व्यवस्था की धज्जियां उडाते हुए आर्य समाजों ने रज वीर्य दोषित वर्ण व्यवस्था की कुप्रथा के आधीन जो आपस में विवाह कराये उन्हें अन्तर्जातीय विवाह के रूप में प्रचारित करके आर्य समाज ने ओछी प्रतिष्ठा पाने की कोशिश की किन्तु शनैः शनैः आर्य समाज घर से भाग भागकर आर्य समाज में विवाह कराने के रूप में बदनाम होने लगा जो आज भी अधिकांश जगह हो रहा है। इस कार्य से आर्य समाज को अपयश मिला है और ऊपर से गुण कर्म स्वभाव के विपरीत विवाह कराकर हमने समाज के कई अभिभावकों को अपना विरोधी बना दिया। आर्य समाज को एक षडयंत्र के तहत् इस संस्कार के माध्यम से बदनाम भी किया जा रहा है। कुछ स्वार्थी तत्त्वों द्वारा सिद्धातों की तिलाञ्जलि देकर अभिभावकों की अनुपस्थिति में विवाह कार्य करके मात्र धन कमाने में लगे हैं। आज भी समय है कि आर्य समाज माता पिता की अनुपस्थिति में विवाह करना बंद कर दे तो समाज में फैलायी जा रही एक कुरीति से हम बच सकते हैं। आर्य समाज के गुण कर्म स्वभाव के अनुरूप वर्णों में विवाह के संदर्भ को खोखला करके जो विवाह आज समाजों में कराये जा रहे हैं उनमे समाज को प्रचार की बजाय हानि हो रही है। आज लोगों में आर्य समाज की छबि धूमिल होती जा रही है। शीर्ष नेतृत्व को एक समान नियमावली बनाकर माता पिता आचार्य / अभिभावक के सानिध्य/ उपस्थिति में ही समाजों में विवाह कराने चाहिए और इसीसे आर्य समाज की और महर्षि द्वारा स्मरण कराये गये वैदिक सिद्धान्तों एवं स्वस्थ परम्परा को बचाया जा सकता है।

संगीत आर्य
9323573892

अमर संन्यासी श्रद्धानन्द

डॉ. विनोदचन्द्र विद्यालंकार
– श्री अमीरचन्द खन्ना जरनलिस्ट (हाफ़िज़ाबादी)

श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज अपने समय के अद्वितीय निर्भीक दण्डधारी संन्यासी थे। निडर और निर्भीक होना प्रत्येक के भाग में नहीं आया। श्री स्वामीजी महाराज निर्भयता और निडरता के क्षेत्र में स्वयं ही उदाहरण थे, और यही एक गुण है जो संन्यासी में प्रगट रूप में होना चाहिए। स्वामीजी महाराज यथार्थ में संन्यासी और दण्डधारी थे। आप सच्ची और बेलाग बात हर एक के प्रमुख पर कहने में सदैव उद्यत रहते थे। सचाई और यथार्थता को बयान करने में आप अपनी ऊँची आवाज़ और ओजस्वी लेखनी से कार्य लेते थे। स्वामीजी के जीवन से परिचित हर व्यक्ति को कहना पड़ता है कि श्री स्वामीजी महाराज को उसी समय सुख मिलता था जबकि आपकी अनुभूत सच्चाई संसार के एक कोने से दूसरे कोने तक विद्युत की तरह फैल जाती थी। स्वामीजी महाराज के जीवन में सबसे उत्तम प्रकट बात, जो महाराज को अन्य नेताओं से भिन्न करती है, यही निर्भयता और निर्भीकता भी। स्वामीजी महाराज ने एक समाज सुधारक की भांति किसी समय इस गुण में न्यूनता नहीं दिखलाई। समाज सुधारक को बहुधा परे होना पड़ता है, झुकना पड़ता है, परन्तु स्वामीजी महाराज दरमियानी रास्ता निकालना और ग्रहण करना जानते ही न थे। स्वामीजी के सामने अन्य जातीय समाज सुधारक बहुत कम प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध या साधाण व्यक्ति हैं। इन समाज सुधारकों की प्रतिष्ठा इसी बात पर निर्भर है कि वह स्थानीयसफ़सरों, तत्कालीन शासन और समाज के प्रभावशाली व्यक्तियों और जोर वाले अफ़सरों से मेल रखें।

इस सम्बन्ध में स्वामीजी के सामने ईसाई पादरी हैं। इन लोगों के जीवन विशेषतया स्थानीय अधिकारी, सामयिक शासन यन्त्र और प्रभावशाली या ज़ोरदार व्यक्तियों से मिले रहते हैं या उनका होकर रहने में ही बस है। स्वामीजी दूसरे हम असर मुहम्मदी प्रचारक या रिफ़ारमर ईसाई पादरियों से भी चार पग आगे हैं। क्योंकि, मुहम्मदी समाज सुधारक न केवल राजभक्त हैं, वरन् शासन को प्रसन्न करने में घृणित कार्य करने के लिए भी उद्यत रहते हैं। जिसका प्रत्यक्ष समाचार पत्र-संसार के सन्मुख भलीभांति हो चुका है। परन्तु स्वामीजी महाराज इस सब्बन्ध में निर्दोष, अटल और अद्वितीय प्रमाणित हुये हैं, कदाचित् ही ऐसा कोई होगा। श्री स्वामीजी महाराज उस महापुरुष के शिष्य हैं जिसने किसी पुरुष के सामने झुकने से निषेध कर दिया था और जिसने अपने काल के अन्य समाज सुधारको की तरह शासन से सहयोग रखने में कोई लाभ नहीं देखा था। श्री स्वामी दयानन्दजी महाराज के समकालीन जितने समाजसुधारक थे वह भी निभर्यता और निर्भीकता के गुण से शून्य थे और खुशामद, चापलूसी आदि घृणित कार्य से वे लथपथ थे। श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज इस अद्वितीय निर्भीक पुरुष के शिष्य होते हुए अपने समय के अद्वितीय भयहीन व्यक्ति थे।

धुन के पक्के

श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज जहाँ निर्भय व्यक्ति थे वहाँ दृढ़ निश्चय के भी अद्वितीय स्वामी थे। महाराज यथार्थ अर्थ में अपनी लगन के पूरे थे। आप के जीवन चरित्र के स्वाध्यायी परिचित हैं कि स्वामीजी महाराज जिस बात पर अड़ जाते थे और जिस सिद्धान्त के महत्त्व को आप एक बार स्वीकार कर लेते थे, आप उसको अपने ही तक सीमित नहीं रखते थे वरन उसे चतुर्दिक् देश में फैलाने के इच्छुक रहते थे। आपने आज से लगभग २५ वर्ष पूर्व एक अनुभव किया था कि भारत में प्राचीन शिक्षण-शैली होनी चाहिए। बस इस ही धुन में आपने अन्यान्य त्याग किया। तन, मन, धन यहाँ तक कि संचित धन, जायदाद, सांसारिक प्रचलन सबको तिलाञ्जलि दे वन की राह ली और जंगल में मंगल कर दिया। गुरुकुल काँगड़ी की नींव डाली। उनके इस जिद्धान्त के आगे आज संसार सिर झुकाता है। केवल इस सिद्धान्त से प्रभावित होकर अत्यन्त पक्षपाती और संकीर्ण हृदय मुहम्मदी सर अब्दुल रहीम ने भी आपके उस परिश्रम की प्रशंसा की जो आपने इस सिद्धान्त के प्रचार के लिए किया। संसार के श्रेष्ठ कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर आपके पग पर चले और शान्तिनिकेतन में वही शिक्षण-पद्धति स्थापित की जिसे आपके निर्मल दूरदर्शी मस्तिष्क ने २५ वर्ष पूर्व अनुभव किया था। जिस समय आपने इस सिद्धान्त को संसार के सामने रखा सर्वसाधारण ने किसी अंश में आपको निराश किया, परन्तु आपने किञ्चित भी साहस नहीं छोड़ा।

आज संसार देखता है, आपके सिद्धान्त को सर्वांश में यथार्थ मानता है। स्थान-स्थान पर गुरुकुल खुल रहे हैं। स्वयं ईसाई और मुसलमान भाई भी इस सिद्धान्त के कायल हैं। यद्यपि इनकी संस्थाएँ इन गुरुकुलों से कहीं भिन्न हैं, परन्तु ढंग वही है। स्वामीजी ने इस सिद्धान्त को इस संसार और विरोधी जगत् में चलाने के लिए २५ वर्ष घोर तपस्या की। तभी तो आज संसार कह रहा है कि स्वामीजी अपने धुन के पक्के थे और इसके लिए हर प्रकार का त्याग, परिश्रम और कष्ट सहने के लिए अपार साहस रखते थे।

ईश्वर की सृष्टि का सेवक

स्वामीजी महाराज प्राचीन आर्य सभ्यता के प्रेमी होते हुए भी स्वामी दयानन्द सरस्वती के उद्‌भट शिष्य होते हुए, हिन्दू घराने में जन्म लेते हुए और हिन्दू संस्कारों में पलते हुए ईश्वर सृष्टि के सेवक थे। पक्षपाती संकुचित सृष्टि आप में थी ही नहीं। आप सबके साथ प्रेम का व्यवहार करते थे। आप में छल-कपट डिप्लोमेसी नाममात्र को भी न थी। आपका प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष एक था, आप बदला या इन्तकाम या किसी को कष्ट पहुंचाने के विचार तक से घृणा करते थे। आपके विरोधी भी इसी बात के कायल और प्रशंसक थे। आप जिस बात को अनुभव करते थे वही कहते थे, लीपापोती और बनावट से आपको घृणा थी, आपने कभी मुसलमानों का विरोध उनके मुसलमान होने के ढंग पर नहीं किया। और तो और आपने उस समय जबकि जातीय वैमनस्य की अग्नि प्रचण्ड थी, अपनी जान का रखवाला डॉ. अन्सारी को माना हुआ था। सच तो यह है

कि डॉ. अन्सारी भी इस सम्बन्ध में बहुत उच्च और श्रेष्ठ कोटि के व्यक्ति हैं। प्राचीन आर्य सभ्यता के प्रेमी होते हुए हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के हामी थे, मुस्लिम स्वराज्य के अमूल्य रत्न की प्राप्ति की आपकी महती इच्छा थी। आपने जीवन भर ऐसा शब्द नहीं निकाला जो गैर जिम्मेदाराना हो, जिससे किसी का हृदय दु:खी हो, जिससे किसी जातिगत वैमनस्य की गन्ध आई हो, हाँ शुद्धि के सम्बन्ध में आपका सिद्धान्त स्पष्ट था। आप अनुभव करते थे कि आर्य धर्म का द्वार प्रत्येक के लिए खुला है और जो चाहे आर्य धर्म, वैदिक धर्म के शुद्ध पवित्र स्त्रोत में अपनी प्यास बुझाये। आपने इस भावना के अनुसार अपने घातक को तत्काल अन्दर आने की आज्ञा दी, जबकि डॉक्टरों ने अपने प्रेमियों, भक्त शिष्यों और सेवकों सबसे वार्तालाप करने के लिए निषेध किया हुआ था। वैदिक धर्म की भांति स्वामीजी के दरवाजे भी हर एक कामना रखनेवाले के लिए खुले थे। मित्र, शत्रु, घातक, सेवक, शिष्य और अनार्य सभी के लिए स्वामीजी का दरवाजा खुला था। स्वामीजी महाराज सेवा क्षेत्र में जातपाँत, रंग-रूप का भेद पाप समझते थे। मेरा दावा है कि अदूरदर्शी, पक्षपाती मुल्लाओं को भी स्वामीजी के इस गुण का समय व्यतीत होने पर कायल होना पड़ेगा। समय था कि इस गुण के कारण ही स्वामीजी महाराज का भारत की सबसे बड़ी मस्जिद की वेदी (मिम्बर) पर उपदेश करने के लिए निमन्त्रित किया गया और मुसलमानों ने उसे अपना सौभाग्य समझा। वह सब ऐसा होना प्रकट करता है कि स्वामीजी महाराज ईश्वरीय सृष्टि के सेवक थे।

अभिमन्यु की वीरता

महाभारत के पाठक मानते हैं कि अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु ने महाभारत में जो वीरता दिखलाई वह किसी और ने नहीं दिखाई। श्री स्वामीजी महाराज ने भी प्रत्येक जीवन-पथ और कठिनाई में अभिमन्यु की सी वीरता प्रदर्शित की है।

शासन से टक्कर लेने में अपने भाई बन्धुओं से सामाजिक सुधार करने में जिस अटूट साहस और अपार वीरता का प्रदर्शन स्वामीजी महाराज ने अपने सारे जीवन में किया है वह भी अद्वितीय है। सन् १९१९ में जबकि शासन की बन्दूकें, तोपें बन्दूकों और संगीनों के भी स्वामीजी महाराज ने अपनी निधड़क, निडर, वज्र-समान छाती को नग्न करके दांदा खड़े कर दिये थे। सच है तैराक की मृत्यु जल में होती है। गोलियों की बौछार में छाती फैला बैठने वाले, निर्भय और निधड़क होकर रहनेवाले तथा सबको समान दृष्टि से देखनेवाले के लिए आवश्यक था कि वह छाती में गोलियाँ खाकर शूरवीर की भांति सिपाही की मृत्यु प्राप्त करें। दृढ़ छाती रखने वाले को निमोनिया का रोग संसार से उठा ले, यह असम्भव था। स्वामीजी ने अभिमन्यु की मौत का स्वागत किया। हर खतरे में पड़ते रहे, आग में पड़ते रहे, आग में उछलते रहे, आपत्तियों को अपने सिर लेते रहे, अकाली मोर्चों को अपना मोर्चा समझा, उस आग में भी आ कूदे और परमात्मा की लीला देखिये कि इन दिनों जबकि गोलियों और तोपों की भयानक ध्वनि का अभाव है तब भी अपने समय का वीरता का अभिमन्यु गोलियों का शिकार होता है।

सर्वोपरि प्रिय व्यक्ति

श्री स्वामीजी महाराज का कत्ल हुआ, देश के इस स्वच्छ वायुमण्डल के होते हुए भी हाहाकार मच गया। प्रत्येक ने महाराज के बलिदान पर श्रद्धा के पुष्प भेंट किये। वृद्धावस्था और बलिदान परमात्मा ने आज तक किसी को भी दान नहीं किये, इस बलिदान की हर इच्छा करता है। व्यक्तिगत वैमनस्य की अग्नि प्रचण्ड होते हुए भी स्वामीजी की अर्थी के साथ अनन्त संख्या में शोक मनाने वालों का भाग लेना प्रकट करता है कि स्वामीजी महाराज अपने काल के सर्वोपरि प्रिय व्यक्ति थे। स्वामीजी विशाल हृदय, विचार के पवित्र तथा बनावट से घृणा करने वाले थे। यही कारण है कि प्रत्येक व्यक्ति महाराज को प्यार करता है। श्री स्वामीजी महाराज सबके थे और यही कारण है कि महाराज के उठ जाने पर हर व्यक्ति शोक के आँसू बहाता था। मगर स्वामीजी तो अमर हैं। उनका कार्य शानदार था, उनका सेवाभाव अद्वितीय था। परमात्मा करे कि उनके द्वारा स्थापित कार्य अधिक वेग से चले।

विचार शक्ति का चमत्कार

(पूरा दिन पूरे जीवन के समान है–२)

प्रिय पाठको, पिछले अंक में हमने देखा कि किस तरह दिन का विभिन्न समय जीवन के विभिन्न आयु के पड़ाव से सम्बंध रखता है। अब जीवन सत्तर वर्ष पूरे हो चुके हैं और रात्रि आरम्भ हो चुकी है। जीवन की रात्रि नेभी पदार्पण कर दिया है तथा आठ बज चुके हैं। दिन की अंतिम घड़ियाँ शुरु हो चुकी हैं वैसे ही जीवन की भी अंतिम घड़ियाँ शुरु हो चुकी है। मृत्यु नजदीक है अथार्त सोने का समय नजदीक आ रहा है। इस समय दिन भी शिथिल हो चला है वैसे ही मनुष्य की इंद्रिया भी शिथिल होने लगती है। यह करीब सत्तर वर्ष के बाद का समय समाझिये। निद्रा की तुलना मृत्यु से की गई है। जब मनुष्य सो रहा होता है तो उसका शरीर शव के समान ही होता है। केवल श्वासो का चलना द्रश्यमान होता है व अवचेतन मन कार्य कर रहा होता है। शरीर के सारे अंग शिथिल पड़े होते है। इस पूरे प्रकरण को रात्रि आठ बजे से लेकर प्रात: छह बजे तक का समय समझिये। प्रात: उठने के पश्चात पुन: नये दिन व नये जीवन की शुरुआत होती है।

उपर्लिखित लेख एक प्रतिकात्मक व व्यवहारिक जीवन शैली का मापदंड लेकर मिला जा रहा है। रात्रि में सोने का समय व प्रात:काल उठने का समय हर व्यक्ति का अलग अलग हो सकता है। उसे उसी तरह समय सीमा व जीवन के साथ जोड़ा जा सकता है।

प्रिय पाठको, इस पूरे लेख में एक बात स्पष्ट रुपसे समझमें आती है कि हमें हर दिन इस तरह से व्यतीत करना चाहिए जैसे हमने पूरा जीवन बिताया हो, न जाने कल की सुबह हम देख पाएं या नहीं। ईश्वर का ध्यान व मनन उतने उत्साह व प्रसन्नता से करना चाहिए जैसे यह दिन जीवन का आखिरी दिन हो, कल अवसर मिले न मिले। बहुत बहुत धन्यवाद।

राजकुमार भगवतीप्रसाद गुप्त
उपप्रधान, आर्य समाज, वाशी

नारी उत्थान
महर्षि दयानन्द सरस्वती एवं आर्यसमाज के प्रयत्न

सुन्दरलाल कथूरिया

जिस समय स्वामी दयानन्द जी सरस्वती समाज-सुधार एवं वेद-प्रचार के क्षेत्र में एकनिष्ठ भाव से सक्रिय हुए, उस समय समाज में स्त्रियों को हेय दृष्टि से देखा जाता था। उनकी दशा दीन-हीन थी तथा उन्हें नर्क का एकमात्र द्वार समझा जाता था, पैरों की जूती समझा जाता था तथा उन पर नाना प्रकार के अत्याचार किये जाते थे। शूद्रों एवं स्त्रियों के लिए वेदों के पठन-पाठन की मनाही थी। इसके लिए मध्यकालीन मुलग शासन-व्यवस्था विशेषकर उत्तरदायी थी। मुगलों के शासन-काल में इस देश में अनेक कुप्रथाएँ प्रचलित हो गयीं, जिनमें सती प्रथा, पर्दा-प्रथा, बाल-विवाह प्रथा, दहेज-प्रथा, नारी-अशिक्षा एवं स्त्रियों को पुरुषों की अपेक्षा हीन दृष्टि से देखना प्रमुख हैं। स्त्री पुरुष को असमान मानकर नारी को अबला कहा जाने लगा तथा उन पर घोर अत्याचार भी किये जाने गले। करुणा के अवतार देव दयानन्द से नारियों की यह दुर्दशा देखी न गयी और उन्होंने स्त्री जाति की दशा को सुधारने एवं समाज में उन्हें सम्मानजनक स्थान दिलाने का संकल्प ले लिया।

आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द जी के मन में नारियों के लिए अत्यधिक समादर का भाव था। वे प्रत्येक नारी को मातृशक्ति के रूप में देखते थे और मनु के इस कथन को हृदय से स्वीकार करते थे कि जहाँ नारियों की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं **(यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:):** अपने इसी दृष्टिकोण के कारण उन्होंने 'सत्यार्थ प्रकाश' के द्वितीय समुल्लास के प्रारम्भ में ही '**मातृमान् पितृमानाच्यार्यवान् पुरुषो वेद**' कहा है तथा बालिकाओं की शिक्षा का भी समर्थन किया है- 'जब पाँच-पाँच वर्ष के लड़का लड़की हों तब देवनागरी अक्षरों का अभ्यास करावें।' अन्ध- विश्वासों एवं दुराचारों का विरोध करते हुए उन्होंने उन माता-पिताओं को अपनी सन्तानों का पूर्ण वैरी कहा है जो उन्हें सुशिक्षित बनाने की चेष्टा नहीं करते।

'सत्यार्थ प्रकाश' के तृतीय समुल्लास में '**स्त्रीशूद्रौनाधी–यतामिति श्रुते:**' को कपोलकल्पित मानते हुए देव दयानन्द ने वैदिक प्रमाणों को उद्धृत करते हुए यह सिद्ध किया है कि स्त्रियों को वेदादि पढ़ने का पूर्ण अधिकार है, तभी तो 'भारतवर्ष की स्त्रियों में भूषणरूप गार्गी आदि वेदादि शास्त्रों को पढ़ के पूर्ण विदुषी हुई थीं।' स्वामी जी ने सुपठित नारियों को अध्यापिका, राजकार्य, न्यायाधीशत्वादि के पदों पर आसीन होने एवं गृहस्थाश्रम के कार्यों के साथ युद्ध विद्या, व्याकरण, धर्म, वैद्यक, गणित, शिल्पविद्या आदि को प्राप्त करने की बात कही है। आज जब हम नारियों को जीवन के सभी क्षेत्रों में कार्य करते हुए देखते हैं तो हमें लगता है कि जैसे महर्षि का स्वप्न साकार हो रहा है।

स्वामी दयानन्द एवं उनके द्वारा संस्थापित आर्यसमाज ने सती प्रथा, पर्दा-प्रथा, बाल-विवाह, दहेज-प्रथा, अन्धविश्वासों, अशिक्षा आदि का विरोध करते हुए स्त्री शिक्षा पर बल दिया। इसका सुपरिणाम यह हुआ कि स्त्री शिक्षा का प्रचार प्रसार होने लगा, पर्दा-प्रथा काफी कम हुई, बाल-विवाह भी अपेक्षाकृत कम हुए तथा आर्यसमाज से जुड़ी अनेक महिलाएँ वेद-पाठ भी करने लगी। प्रारंभ में नारियाँ जहां केवल शिक्षा या चिकित्सा के क्षेत्र में जाना पसन्द करती थीं, वहाँ अब वे इंजीनियरिंग, पुलिस सेना, राजनीति एवं अन्यान्य क्षेत्रों में भी सहर्ष पदार्पण कर रही हैं तथा उन क्षेत्रों में अपना विशिष्ट स्थान बना चुकी हैं।

नारी शिक्षा के क्षेत्र में सहशिक्षा का प्रश्न पर्याप्त विवादास्पद है। महर्षि ने तो बालक-बालिकाओं के लिए पृथक् गुरुकुलों का समर्थन किया था, किन्तु आश्चर्य की बात है कि अनेक डी.ए.वी. विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में सहशिक्षा का प्रचलन बढ़ा है। सहशिक्षा की अच्छाइयों - बुराइयों पर बहुत गंभीरता से विचार करने एवं उसके बाद किसी निष्कर्ष पर पहुँचकर कम-से-कम उन उपायों पर ध्यान देने की आज आवश्यकता है जिनसे सहशिक्षा के दुष्परिणामों से बचा जा सके।

बाल-विवाह का विरोध करते हुए स्वामी जी ने '**अष्टवर्षा भवेद् गौरी**' आदि को प्रमाण नहीं माना है तथा यह स्वीकार किया है कि 'सोलहवें वर्ष से लेके चौबीसवें वर्ष तक कन्या और २५ वें वर्ष से लेके ४८ वें वर्ष तक पुरुष का विवाह समय उत्तम है।' (चतुर्थ समुल्लास) अक्षतयोनि स्त्री और अक्षतवीर्य पुरुष के पुनर्विवाह एवं नियोग प्रथा से सन्तानोत्पत्ति का समर्थन भी 'सत्यार्थ प्रकाश' के चतुर्थ समुल्लास में है। इस प्रकार नारी जाति के अभ्युत्थान के लिए ऋषि दयानन्द ने यथेष्ट प्रयत्न किये तथा कालान्तर में आर्यसमाज ने उन कार्यो को आगे बढ़ाया। आधुनिक युग में नारी जीवन के सामाजिक अभ्युत्थान का प्रथम शंखनाद देव दयानन्द ने ही किया। मैं यह तो नहीं कहता कि नारियों ने सामाजिक जीवन में सब कुछ पा लिया है, पर जो पाया है, वह भी कम नहीं है और जो नहीं पाया है, उसके लिए आर्यसमाज निरन्तर आन्दोलन करता रहेगा। 'कन्या भ्रूण हत्या' एवं नारियों पर होने वाले अत्याचारों के विरूद्ध आर्यसमाज का आन्दोलन आज भी जारी है। मेरा विश्वास है कि आर्यसमाज के इन प्रयत्नों से नारी समाज उत्पीड़न से मुक्त होकर और अधिक सामाजिक प्रतिष्ठा को प्राप्त कर सकेगा।

❑❑❑

उसका पार कोई नहीं पा सकता

आचार्य प्रियव्रत

नहि ते क्षतं न सहो न मन्युं
वयश्चनामी पतयन्त आपुः।
नेमा आपो अनिमिषं चरन्तीर्न
ये वातस्य प्रमिनन्त्यभ्वम्।।६।।

अर्थ-हे देव! **(नहि)** न तो **(ते)** तुम्हारे **(क्षत्रम्)** बल को **(न)** न **(सहः)** सहन करनेवाले सामर्थ्य को **(न)** और न ही **(मन्युम्)** पापियों का दलन करनेवाले क्रोध को **(अमी)** ये **(पतयन्तः)** उड़ते हुए **(वयः)** पक्षिगण **(चन)** भी **(आपुः)** पा सकते हैं **(न)** न **(अनिमिषम्)** निर्निमेष, निरन्तर **(चरन्तीः)** बहते हुए **(इमाः)** ये **(आपः)** जल **(न)** और न ही **(ये)** जो **(वातम्य)** वायु के **(अभ्वम्)** वेग को **(प्रमिनन्ति)** मार देते हैं, मात कर देते है (वे पदार्थ भी तुम्हारे बल, पराक्रम और क्रोध को नहीं पा सकते हैं।)

भगवान् में असीम क्षत्र, असीम सह और असीम मन्यु है। क्षत्र का अर्थ बल होता है। भगवान् के बल की तुलना नहीं हो सकती। उनका-सा बल कहीं नहीं मिल सकता। उनमें असीम बल है। इस असीम विश्वब्रह्माण्ड में सूर्य, चन्द्र, पृथिवी आदि जो असंख्य पिण्ड घूम रहे हैं, जिनकी सत्ता की हलकी-सी झाँकी रात के समय झिलमिलाते हुए नभोमण्डल की ओर निहारने से होती है, उन असंख्य पिण्डों का धारण और उनका अपने-अपने नियमित मार्ग पर चलना भगवान् के असीम बल की सूचना देता है। इनमें से एक-एक पिण्ड अरबों-खरबों मन भारी हैं। इतने अकल्पनीय भारवाले ये पिण्ड हर समय कल्पनातीत गति से दौड़ रह हैं। हमारी पृथ्वी की गति बहुत मन्द है, परन्तु यह भी प्रति सैकण्ड साढ़े उन्हत्तीस मील के वेग से सूर्य के चारों ओर चक्कर काट रही है। अपने अक्ष पर इसकी गति सहस्त्र मील प्रति घण्टा है। अन्य पिण्डों की गति का तो कुछ पूछिए ही मत। गतिमान् पिण्डों का यह नियम है कि यदि उन्हें कोई बाधा न दे रहा हो तो वे सदा सीधी रेखा में दौड़ा करते हैं। ये विराट् गति से दौड़नेवाले आकाशीय पिण्ड भी यदि इन्हें कोई बाधा न पहुँचती तो सीधी रेखाओं में दौड़कर एक-दूसरे से टकराकर कभी के नष्ट-भ्रष्ट हो गये होते, परन्तु इन्हें सीधी रेखाओं में दौड़ने में कोई बाधा है, इसलिए ये एक-दूसरे के चारों ओर परिधियों में घूमते हैं और परस्पर टकराकर नष्ट -भ्रष्ट नहीं होने पाते, प्रत्युत इस परिमण्डलात्मक गति में घूमने के कारण ये पिण्ड एक-दूसरे के उपकारक हो जाते हैं, जैसाकि हम सूर्य, पृथिवी और चन्द्रमा की गतियों में देखते हैं। इन आकाशीय पिण्डों को सीधी रेखाओं में दौड़ने में बाधा कहाँ से आती है? यह बाधा केवल परस्पर के आकर्षण की नहीं हो सकती। अनेक पिण्ड एक-दूसरे के चारों ओर इतनी तीव्र गति से घूम रहे हैं कि उनकी गति पर पारस्परिक आकर्षण का प्रभाव नहीं पड़ सकता। कोई पिण्ड एक निश्चित गति में दौड़ने पर आकर्षण की सीमा से बाहर हो जाया करता है। इन आकाशीय पिण्डों को सीधी रेखाओं में न दौड़ने देनेवाली बाधा आकर्षण के अतिरिक्त परमात्मा की शक्ति की बाधा है। उस बाधा के कारण ये पदार्थ सीधे न दौडकर एक-दूसरे के चारों ओर परिमण्डलात्मक गति में घूमते हैं, इसलिए इनकी सत्ता बनी हुई है। संसार की प्रलयावस्था के समय भगवान् अपनी शक्ति की बाधा को हटा लेते हैं। जिसका फल यह होता है कि ये पिण्ड सीधी रेखाओ में दौड़कर परस्पर टकराकर नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। जो भगवान् असीम गति से दौड़ रहे असंख्य आकाशीय पिण्डों की सीधी गति को बाधा देकर निरन्तर उन्हें परिमण्डलात्मक गति में घुमा रहा है और इन पिण्डों के विराट भार को धारण किये हुए है उसके असीम क्षत्र का, असीम बल का सहज ही अनुमान किया जा सकता है।

भगवान् का सह भी असीम है। सह का अर्थ वह बल, वह सामर्थ्य वह शक्ति है जिसके कारण हम दूसरों के आक्रमणों से घबराते नहीं हैं, उन्हें सहन कर लेते हैं। भगवान् में यह सह लेने की शक्ति, यह सह लेने का पराक्रम भी असीम है। विश्वब्रह्माण्ड को धारण करने की क्रिया-से तो उनकी एक प्रकार की असीम सहनशक्ति का परिचय मिलता ही है, इसके अतिरिक्त उनमें एक और प्रकार की भी सहनशक्ति है। प्रभु की न्याय-व्यवस्था के कारण हमें अनेक बार सुखों से वञ्चित होकर दुःखों में ग्रस्त होना पड़ता है। हम अल्पज्ञ प्राणी प्रभु की व्यवस्था का रहस्य न समझने के कारण प्रभु से अप्रसन्न हो जाते हैं और उन्हें अनेक प्रकार के अपशब्द कहते रहते हैं। प्रभु इस सबको सहन करते रहते हैं। क्रोध में आकर हमें उसी समय ध्वस्त नहीं कर देते। नास्तिक लोग सदा ही प्रभु का खण्डन करते रहते हैं। उनकी हँसी उड़ाते रहते हैं। प्रभु इस सबको भी सहन करते रहते हैं। इसके कारण वे नास्तिक पर क्रुद्ध नहीं होते। वे अपनी न्याय-व्यवस्थानुसार सबका यथायोग्य पालन करने रहते हैं। वे अपने निन्दकों पर अपनी निन्दा के कारण विशेषरूप से क्रुद्ध होकर उन्हें विशेष कष्ट नहीं देते। यदि नास्तिकों का आचरण पवित्र रहता है तो उन्हें भगवान् सुख ही प्रदान करते हैं। अपने खण्डन और निन्दा से चिढ़कर उनके पुण्याचरणों का फल नहीं छीन लेते। असंख्य प्राणी उन्हें कोसते रहते हैं, परन्तु भगवान् उससे विचलित नहीं होते। सचमुच भगवान् में असीम सहनशक्ति है।

भगवान में मन्य भी असीम है। मन्यु क्रोध को कहते हैं, परन्तु प्रत्येक क्रोध को मन्यु नहीं कहते। मन्यु शब्द ''मन'' धातु से बनता है, जिसका अर्थ सोचना-विचारना होता है। जो क्रोध यों ही आवेश में, उबाल में आकर नहीं प्रत्युत सोच-विचार के साथ किया जाता है, उसे मन्यु कहते हैं। सामान्य क्रोध में क्रोध करनेवाले के मन की वृत्ति तामस् या राजस् रहती है, परन्तु मन्यु में मन की वृत्ति सात्त्विक रहती है। मन्यु में क्रोध करनेवाले के मन का भाव बदला चुकाना नहीं होता प्रत्युत अपराधी को सुधारना होता है, दण्ड देकर उसे सही मार्ग पर लाना होता है। भगवान् का क्रोध सदा सात्त्विक होता है, मन्यु होता है- वह अपराधियों को सुधारने की वृत्ति से किया जाता है, क्योंकि मन्यु सोच- विचारकर किया जाता है, इसलिए उसमें स्थिरता होती है। उसमें सामान्य क्रोध की भाँति दूर के उफान का-सा आवेश और तीव्रता, फिर उसी की भाँति झट शान्त हो जाने की प्रवृत्ति नहीं होती। इस प्रकार का मन्यु भगवान् में असीम है। जब भगवान् प्राणियों का सुधारने की भावना से उनके अपराधों का दण्ड देने का निश्चय कर लेते है तब उनके मन्यु से बड़े-से-बड़ा शक्तिशाली भी नहीं बच सकता। समग्र विश्व भी इकट्ठा होकर उनके मन्यु से अपराधी की रक्षा नहीं कर सकता। अपराधी प्रभु के

शेष पृष्ठ १० पर.

अध्यात्मिक उन्नति

पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय

आध्यात्मिक उन्नति उच्च पर्वत-शिखर पर चढ़ने के समान दुरूह कार्य है। शरीर के माध्यम से ही हम आत्मा का विकास कर सकते हैं और इसी के माध्यम से हमारी आत्मिक उन्नति की अभिव्यक्ति संभव है। जिस घर में हम निवास करते हैं वह हमारे हित के लिए अभिप्रेत है। इसे नष्ट कर दो तो हमारी ही हानि होगी।

यह अवस्था हमारे शरीर की है। शरीर की आवश्यकताओं से हमारी आदतें बनती हैं, जिनका सम्बन्ध हमारी आत्मा के साथ होता है। चलना सीखने का प्रयत्न करते हुए बच्चे के बार-बार गिर जाने से उसके मानसिक और आत्मिक विकास में सहायता मिलती है। उनसे वे बारीक धागे बनते हैं जिनसे आत्मिक उत्थान का ताना-बाना पूरा हो जाता है। विवाहहित जीवन की भूमि पर ही आत्मिक उत्थान की उपज हो सकती है। विवाह पवित्र और आत्मिक सम्बन्ध होता है। यह एकमात्र दो शरीरों का ही मिलन नहीं होता, अपितु यह दो आत्माओं को एक आत्मा बनाने का साधन होता है। आत्माओं के मिलन की यह प्रक्रिया उस समय तक जारी रहती है जब तक मेरे-तेरे की भावना नष्ट नहीं हो जाती, और जब तक हमारा संकुचित दृष्टिकोण इतना विशाल नहीं बन जाता कि जिसमें विश्व के प्राणीमात्र का हित ओतप्रोत हो। वैदिक धर्म-ग्रन्थों में विवाहित जीवन की बड़ी महिमा वर्णित है। मनुस्मृति के निम्नलिखित श्लोक बड़े मार्के के हैं-

अपत्यं धर्म्मकार्याणि शुश्रूषा रतिरुत्तमा।
दारीधानस्तथा स्वर्ग: पितृणामात्मनश्च ह।।

(मनु. ९/२८)

यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तव:।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमा:।।

(मनु. ३।७७)

यस्मात् त्रयोऽप्याश्रमिणो दानेनान्नेन चाव्हहम्।
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्येष्ठश्रमो गृही।।

(मनु. ३।७८)

स: संधार्य: प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता।
सुखं चेहेच्छता नित्यं योऽधार्यो दुर्बलेन्द्रिय:।।

(मनु. ३।७८-७९)

सर्वेषामपि चैतेषां वेदस्मृतिविधात:।
गृहस्थ उच्च्यते श्रेष्ठ: स त्रीनेतान् बिभर्ति हि।।

(मनु. ६।८९)

(१) पत्नी इतने अधिक लाभों का स्त्रोत है-

१- पुत्रोत्पत्ति, २- धर्म्म-कार्य, ३-अतिथि- सत्कार, ४-उत्तम रति, ५- पितरों की और अपनी मुक्ति।

(२) जिस प्रकार सब जीव वायु के सहारे रहते हैं उसी प्रकार अन्य आश्रमवाले- ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ तथा संन्यासी- अपनी-अपनी जीविका के अर्थ गृहस्थाश्रम का आश्रय लेते हैं।

शेष पृष्ठ १० पर.

इस अध्याय में हम एक बिल्कुल नए दृष्टिकोण से विवाह पर विचार करना चाहते हैं। डॉ. एनी बेसेन्ट ने किसी स्थल पर कहा है कि ''मैंने श्रीयुत बेसेन्ट से इस आशा के साथ विवाह किया था कि वे स्वर्ग के अधिकाधिक निकट पहुँचने में मेरे सहायक होंगे।'' लोग इस विचार का मख़ौल उड़ा सकते हैं। शतपथ ब्राह्मण के वाजपेय यज्ञ में यूपारोहण का एक अनुष्ठान है।

स रोहयन् जायामामन्त्रयते 'जाया, एहि, स्वो रोहाव इति', 'रोहावं' इत्याह जाया'...

अर्धो ह वा एष आत्मनो यज्जाया। तस्माद् यावत्, जायां न विन्दते नैव तावत् प्रजायते ऽअसर्वाहि तावद् भवति।

(शतपथ ब्राह्मण, ५।२।१।१०)

''स्तम्भ (खंभे) पर चढ़ने की इच्छा करता हुआ पति पत्नी को आमांत्रित करता है- 'हे पत्नी, मेरे साथ आओ। हम दोनों स्वर्गारोहण करें।' पत्नी उत्तर देती है- 'हाँ, हम दोनों मिलकर स्वर्ग को प्राप्त करें।' पत्नी उसकी अर्द्धांगिनी है। जब तक वह पत्नी को प्राप्त नहीं करता वह सन्तानोत्पत्ति नहीं कर सकता। तब तक वह अधूरा है।''

यह एकमात्र अनुष्ठान है; बाह्य चिह्न है और इसकी हँसी उड़ाई जा सकती है। परन्तु स्मरण रखना चाहिए कि समस्त बाह्य चिह्नों की आन्तरिक महत्ता होती है और यह अनुष्ठान एक शिक्षा देता है। पत्नी के बिना कोई पुरुष पूर्ण नहीं होता। स्वर्गारोहण (सुख-विशेष की प्राप्ति) के लिए दोनों को एक-दूसरे का साथ देना चाहिए। वेदकालीन आर्यों का कोई भी धार्मिक अनुष्ठान पत्नी के बिना पूर्ण नहीं समझा जाता था। कारण स्पष्ट है। विवाहित जीवन से आध्यात्मिक उन्नति होती है।

'हम में से प्रत्येक और सब प्रकृति के नियमों के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करते हैं जिनमें से कुछ को हमने समझना प्रारंभ कर दिया है और बहुत-से नियम हमसे पूर्णतया छुपे हुए हैं। सर्वाधिक पूर्ण पुरुष वा स्त्री वह है जो जाने या अनजाने में जीवन को शासित करनेवाले नियमों का इस ढंग से पालन करता है कि जिससे आत्मा शरीर की अधिक-से-अधिक सहायता करे और कम-से-कम बाधा अनुभव करे। शरीर के दुरुपयोग और उसकी उपेक्षा से मन और आत्मा की पूर्ण अभिव्यक्ति कुंठित हो जाती है।

अज्ञान और विषयासक्ति के कारण मौलिक एवं आधारभूत नियमों के अतिक्रमण से सामंजस्य भंग हो जाता है। अदूरदर्शी तपस्या-रत जन शारीरिक प्रवृत्तियों का उपयोग करने के स्थान में उनका विनाश करके आध्यात्मिक उन्नति करने का प्रयास करते हैं। परन्तु मैं डंके की चोट कहता हूँ कि हम प्रकृति की इस प्रकार की व्यवस्था करने के लिए संसार में भेजे जाते हैं जिससे हमारी आत्मिक उन्नति में बाधा उपस्थित न हो। भौतिक जीवन के नियमों से युद्ध करने का दावा करना दुस्साहस ही कहा जा सकता है और ऐसा करनेवाला व्यक्ति अनजाने में श्रेष्ठतम एवं आश्चर्यजनक जीवों की उत्पत्ति से वंचित हो जाता है।'

(विवाहित प्रेम, पृष्ठ ६-७)

मन्यु से न पहले कभी बच सका है, न अब बच सकता है। और न भविष्य में ही कभी बच सकेथा। उनका मन्यु सदा अकुण्ठित रहता है। वे एक समय में आवश्यकता हो तो सारे विश्व के प्राणियों पर भी मन्यु कर सकते हैं। उनका मन्यु असीम है।

भगवान् का अपना स्वरूप, उनका अपना विस्तार भी अनन्त है, असीम है, इसलिए उनके क्षत्र, सह और मन्यु की भी कोई सीमा नहीं है। वे भी अनन्त और असीम हैं। उनकी थाह कोई लेना चाहे तो नहीं ले-सकता। उनका पार कोई पाना चाहे तो नहीं पा सकता। संसार में एक-से-एक वेगवाले पदार्थ हैं। देखो! ये आकाश में उड़नेवाले पक्षी कितने वेग से उड़ते हैं। पानी की धाराओं को देखो, ये कितने वेग से बहती हैं और बहती हुई कभी थमती नहीं। वायु को ही देखो यह कितना वेगवान् है। कभी-कभी तो जल और पानी के वेग से धरती के प्राणी थर्रा जाते हैं। ऐसे भी पदार्थ हैं, जो वायु के वेग को भी मार देते हैं, उसे भी मात कर देते हैं। विद्युत् और प्रकाश को देखो इनका वेग आश्चर्य में डाल देनेवाला है। एक सकन्ड में दोनों पदार्थ एक लाख छियासी हज़ार तीन सौ मील दौड़ जाते हैं। ते तीव्रगामी पदार्थ भी यदि भगवान् के क्षत्र, सह और मन्यु की थाह लेना चाहें तो नहीं ले-सकते। ये कितना ही दौड़ते चले जाएँ इन्हें उनकी थाह नहीं मिलेगी, न कहीं इन्हें अनन्त और असीम भगवान् की थाह मिलेगी और न उनके असीम क्षत्र, सह और मन्यु की। भगवान् का अन्त मिल सके तो उनके क्षत्र, सह और मन्यु का भी मिल सके। कहते हैं हमारा मन विद्युत् से तीव्र दौड़ता है। वह मन भी भगवान् और उनके क्षत्र, सह और मन्यु की ही क्यों, उनके किसी भी गुण और किसी भी शक्ति के कोई थाह नहीं पा सकता। भगवान्, उनके गुण, उनकी शक्तियाँ, सब अनन्त, असीम और अपरिमेय हैं।

क्षत्र का अर्थ राष्ट्र भी होता है। भगवान् का राष्ट्र, उनका राज्य भी असीम है। संसार का प्रत्येक पदार्थ उनके शासन के भीतर है। सब विश्वब्रह्माण्ड पर उनका राज्य है। उनके राज्य की कोई सीमा नहीं पा सकता। वैज्ञानिक और ज्योतिषी लोग जितने आकाश और उसमें फिरनेवाले सूर्य आदि पिण्डों का कुछ ज्ञान प्राप्त कर सके हैं, सारे विश्व के समक्ष उसकी कुछ भी सत्ता नहीं है, परन्तु इस सीमित से आकाश की जिन दूरियों का पता वैज्ञानिकों ने लगाया है वे इतनी विराट् हैं कि उनको कल्पना में लाने की कोशिश करते ही बुद्धि लड़खड़ाकर गिर पड़ती है, स्वब्ध हो जाती है और विश्व तो इन अनन्त-सी दिखनेवाली दूरियों से परे भी अनन्त फैला हुआ है। परमात्मा का इस सारे विश्व पर राज्य है। उसका राज्य असीम है।

''वय:'' का अर्थ हमने पक्षीगण किया है। इसका शब्दार्थ होता है गति करनेवाले। ऋषि दयानन्दजी ने धात्वर्थ के आधार पर ''वय:'' का अर्थ आकाश में फिरनेवाले सूर्य आदि पिण्ड किया हैं। यह अर्थ करने पर भाव यह होगा कि प्रभु के क्षत्र-बल, राष्ट्र, सह और मन्यु की सीमा को आकाश में तीव्र गति से फिरनेवाले सूर्य आदि पिण्ड भी नहीं पा सकते हैं। प्रभु का राष्ट्र इन आकाश में फिरनेवाले सूर्य, ध्रुव, सप्तर्षि और इनसे भी परे, बहुत परे, फिरनेवाले तारों से भी परे है। जहाँ प्राकृतिक जगत् नहीं रहता वहाँ भी भगवान् की सत्ता है। वेद के पुरुषसूक्त में कहा है।

पादोऽस्य विधा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।

-यजु:० ३। ३, ऋ. १०।९०।३

अर्थात् ''विश्वब्रह्माण्ड के पदार्थ तो परमात्मा के एक चतुर्थांश में हैं, परमात्मा का अपना अमृतमय स्वरूप जो प्रकाशमय अवस्था में रहता है, वह ब्रह्माण्ड से तीन चतुर्थांश अधिक है।'' अनन्त परमात्मा के भाग और सीमाएँ नहीं हो सकतीं। केवल प्राकृतिक जगत् और परमात्मा के विस्तार की सापेक्षता को दिखाने के लिए पुरुषसूक्त में यह वर्णन किया गया है। पुरुषसूक्त के इसी भाव को प्रस्तुत मन्त्र के इस कथन द्वारा प्रकट किया गया है कि आकाश में फिरनेवाले सूर्य आदि पिण्ड भी परमात्मा के क्षत्र की-राष्ट्र की सीमा नहीं पा सकते, क्योंकि सूर्यादि पिण्ड और तदुपलक्षित आकाश अपरिमेय, असंख्य और विस्तारवाले होतें हुए भी परमात्मा के केवल एक देश में ही अवस्थित हैं। परमात्मा उनसे परे भी अनन्त है।

हे मेरे आत्मन्! तुम अनन्त क्षत्र, अनन्त सह और अनन्त मन्युवाले भगवान् की सत्ता के आगे सदा झुकते रहो सदा उसकी आज्ञा में चलते, रहो, तभी तुम्हारा गेहिक और आकस्मिक-इस लोक में और परलोक-मोक्ष में कल्याण होगा।

---

(३) गृहस्थाश्रम चारों आश्रमों में श्रेष्ठ है क्योंकि यही अन्य तीनों आश्रमों का पोषण करता है।

(४) लोक और परलोक के सुखार्थी को गृहस्थाश्रम का उत्तम रीति से पालन और सेवन करना चाहिए। दुर्बल इन्द्रियों वाले स्त्री-पुरुष से गृहस्थ का भार नहीं उठाया जा सकता।

(५) वेद और स्मृतियों के विधान से गृहस्थाश्रम चारों आश्रमों में बड़ा है।

पाठकगण प्रश्न कर सकते हैं कि संसार में इतने अधिक विवाहित पुरुष हैं, फिर भी वे आध्यात्मिक दृष्टि से उन्नत क्यों नहीं हैं? इस प्रश्न का उत्तर साफ है। विवाह साधन है, साध्य नहीं है। साधनों का अच्छा और बुरा दोनों तरह का उपयोग हो सकता है। इन्द्रियों की तृप्ति विवाहित जीवन का एक कार्य है। परुष और स्त्री नर और मादा से अधिक उच्च हस्तियाँ होती हैं। वे दोनों हर समय एक-दूसरे को नर और मादा के रूप में कदापि नहीं देख सकते। उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि कुछ असाधारण क्षणों के अतिरिक्त वे दोनों मानव-प्राणी हैं और जीवन-यात्रा में एक-दूसरे के साथी हैं। वैदिक शास्त्रानुसार जिन पाँच महान् यज्ञों का दोनों को मिलकर अनुष्ठान करना होता है वे आत्मिक उन्नति के सर्वोत्तम साधन हैं।

पहला ब्रह्मयज्ञ है अर्थात् ईश्वरोपासना। दूसरा देवयज्ञ का अग्निहोत्र है। तीसरा पितृयज्ञ- माता-पिता की सेवा करना है। चौथा भूतयज्ञ (अर्थात् गौ, कुत्ता वा अन्य कीट-पतंगों एवं पशु-पक्षियों को भोजन देना) है। पाँचवाँ अतिथियज्ञ (मेहमानों का सत्कार करना) है। आदर्श गृहस्थ बनने के लिए पति और पत्नी को प्रतिदिन नियम से इन यज्ञों का अनुष्ठान करना चाहिए। ईश्वर की प्रार्थना और उपासना-सहित वैदिक कर्त्तव्यों के सम्यक् सम्पादन से निश्चय ही परिवार के भौतिक जीवन को आध्यात्मिक रूप प्राप्त होता है और बच्चों पर तथा समाज पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है। जीवनोन्नति की जाली के निर्माण के लिए ताना और बाना, ये दोनों ही प्रक्रियाएँ आवश्यक होती हैं। एक की पूर्ति पति करता है और दूसरे की पूर्ति पत्नी करती है।

बढायें -ईश्वर से निकटता

परमानन्द प्राप्त का एक मात्र मार्ग

पं. उम्मेद सिंह विशारद

ईश्वर किसे कहते है मूल तीन सिद्धान्त

१. ईश्वर उसे नहीं कहते जो कभी हो और कभी न हो? वह अजर-अमर है-

२. ईश्वर उसे भी नहीं कहते जो कहीं हो और कहीं न हो? वह सर्वव्यापक है-

३. ईश्वर उसे भी नहीं कहते जो किसी का हो और किसी का न हो? वह सर्वाधार है। सबका हैं।

समर्पण

ब्रह्माण्ड के रचियेता निराकार सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, सर्वशक्तिमान ईश्वर को पहचानना, जानना, और मानना ही मानव जीवन का सुख का आधार है। चन्दन वृक्ष के समीप उगने वाले पौधे उसकी समीपता की वजह से सुगन्धित हो जाते हैं, वैसे ही उसकी उपासना, साधना, ओर आर्ष ग्रन्थो के स्वाध्याय से हम ईश्वर के करीब अर्थात उसका आभाष कर सकते हैं। ईश्वर के समीपता का अर्थ हे, ईश्वरी गुणों को धारण करना है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने सत्य ईश्वर का मार्ग दिखाया

युग पुरुष महर्षि दयानन्द जी ने आर्य समाज के दूसरे नियम में ईश्वर के सत्य गुण बताकर संसार का कल्याण किया है वह नियम है, ईश्वर सचिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर-अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है। यदि मानव समाज ईश्वर के उपर्युक्त गुणों के आधार पर माने, जाने विचारे तो संसार का सम्पूर्ण मानव कलह ईष्या व अज्ञानता समाप्त हो कर सुख शान्ति का साम्राज्य स्थापित हो सकता है।

ईश्वर के कार्यो को मनन करके उसकी उपासना से निकटता बढती है

उपासना का अर्थ है कि हम ईश्वर के सृष्टि क्रम विज्ञान का मनन करें। यह स्वाभाविक है कि हम जिसके गुणों का मनन करते है, उससे हमें अनुराग होता जाता है, और हम उसके नजदीक होते जायेंगे। इसी प्रकार हम ईश्वर के गुणों का मनन करंगे तो हमारी श्रद्धा ईश्वर से बनती जायेगी। ईश्वर हममे समाविष्ट होते जाएंगें। और हम ईश्वर में समाविष्ट होते जायेगें। हमें ईश्वर के गुणों जैसा बनने का प्रयत्न करना चाहिए। उपासना का तात्पर्य अपनी मनोभूमि को इस लायक बनाना कि हम ईश्वर के आज्ञानुवर्ती बन सके। साधना का अर्थ है अपने गुण कर्म स्वभाव को सात्विक वृत्ति में साध लेना है। इसके लिये हमे नित्य आत्मा निरीक्षण करना चाहिए। अपनी अज्ञानता को दूर करने के लिये स्वाध्याय, संयम, और सेवा के लिये भी हमे प्रयत्नशील होना चाहिए।

आइऐ हम ईश्वर के कूछ कार्यो का मनन करते हैं

ईश्वर ने अदभुत सृष्टि रचना की है और सूर्य, चन्द्रमा, तारे व सारे ब्रह्ममाण्ड को बिना किसी सहारे के अपनी शक्ति से चला रहा है व स्थिर किये हुए है। जैसे-सूर्य पृथ्वी से ९ करोड तीस लाख मील दूर है। चन्द्रमा पृथ्वी से २ लाख चालीस हजार मील दूर है। निरन्तर अपनी धूरी पर घूमते रहते है किन्तु आश्चर्य है इनकी दूरी घटती बढती नहीं है। चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा १७ दिन ७ घन्ट १६ मिनट और १२ सेकिन्ड में पूरी करता है। पृथ्वी अपनी धूरी पर २३ घन्टे ५६ मिनट ९ सैकिन्ड में घूमती है, और सूर्य की परिक्रमा पृथ्वी करते हुए १ सेकिन्ड में १८ मील की दूरी तय करती है, और अपनी धूरी पर १०३७ मील प्रति घन्टा के रफतार से घूमती हैं सूर्य का ब्यास ८ करोड ५८ लाख ८५ हजार मील है। और प्रकाश की किरणे पृथ्वी पर ८ मिनट में पहंचती है। सबसे बडा ग्रह बृहस्पति है जो अपनी धूरी पर ९ घन्टे ५५ मिनट में घूमता है और ३३३ दिनों में सूर्य की परिक्रमा करता है।

सूर्य जलती हुई अग्नि का पिंड है और इसकी सतह का तापमान १२००० डिग्रीसेन्टी ग्रेट है। और दूरी इतनी है कि तापमान सामान्य बना रहता है। अगर थोड़ी सी भी दूरी नजदीक हो जाऐ तो पृथ्वी जलकर राख हो जाये, और थोडी सी दूर हो जाये तो पृथ्वी बर्फ बन जायेगी। सूर्य की किरणे सीधी पड जाये तो जीना दूभर हो जाए। ईश्वर की व्यवस्था से इसमें सुरक्षा ओजोन किरणें रहती है, जिसे ओजोन परत कहते है। इसी प्रकार पृथ्वी का व्यास ७९०० मील है और पर्वतों की ऊंचाई ५११ मील है, और समुद्र की गहराई ७ मील है। ३/४ संसार में जल हैं।

ब्रह्ममाण्ड का प्रत्येक परमाणु एक निर्धारित नियम से कार्य कर रहा है। यदि उसमें जरा भी व्यवधान हो जायेगा तो विराट ब्रह्ममाण्ड का अस्तित्व एक क्षण में समाप्त हो जाये, और एक कण के विस्फोट से अनन्त प्रकृति में आग लग सकती है। सर्वाधिक बडे तारो की चमकने वाली संख्या २० है। इसमें व्याध नाम का तारा सबसे अधिक दीप्तमान है। यह सूर्य की तुलना में २१ गुना अधिक है। सूर्य का तापमान २३१० डिग्री फारेनहाइट है और पृथ्वी ११० फारेनहाइट है।

पृथ्वी के ऊपर अयन मण्डल की पट्टियां जिन्हें आई लेग स्पीयर कहा जाता है जिससे पृथ्वी सुरक्षित रहती है। तथा पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा १ वर्ष में पूर्ण करती है और उसकी गति प्रति घन्टा १ लाख १ सौ ९९ मील होती है। सूर्य और मण्डल का व्यास १ शंख १८ खरब किलोमीटर है और समूचे मण्डल को सम्भालना सूर्य का काम है। समस्त सौर मण्डल बिना टकराये सहायता करते है।

नोट: ईश्वर की महान सुव्यवस्थित नियमित निर्धारित सत्ता का आभास कराने के लिये विभिन्न शास्त्रों से आंकड़े लिये गये है। खगोल शास्त्रीयों के अनुसार इनका वर्णन कम ज्यादा हो सकता हैं। यह तो ईश्वर के संक्षिप्त कार्या का वर्णन हैं यदि हम ईश्वर के गुणों और कार्यों का चिन्तन करेंगे तो उसकी विशालता का आभास हो जायेगा। ईश्वर के गुणो का और सम्पूर्ण सृष्टि क्रम विज्ञान का कोई भी वर्णन नहीं कर सकता है।

ईश्वर से कैसे निकटता और श्रद्धा बढाऐं मेरा अनुभव

हमारी दिनचर्या और उपासना का समय नियमानुसार होना चाहिए और सन्ध्या के बाद चिन्तन करना चाहिए कि ईश्वर अतिमहान् है, अत: यह उसे देख नही सकती, वह अति सूक्ष्म है व सभी पदार्थों में ओत प्रोत है, वह ईश्वर हृदय गुफा में विद्यमान हैं ईश्वर उपासना का समय प्रात: ५ बजे एकान्त सुनसान होता है। स्नान के पश्चात योग आदि करके संध्या करके फिर ध्यान चिन्तन करें कि ईश्वर ने सूर्य, चन्द्रमा, तारे वायु, अग्नि, वनस्पिति, अन्न, फल आदि हमारे लिये दिये है, और ईश्वर की विशालता का भी ध्यान करते जाऐ। कानो में ध्वनि ओ३म् की श्रवण करते जाए एकाग्र होकर ध्यान में उस जगदीश्वर की कृपा का आभास करते करते अश्रुपांत होने लगे तो समझिये हम ईश्वर के निकट आ गये है। अपने हृदय व मस्तिष्क में कल्पना से ओउम लिख लेवें, बस उसी ध्यान में मन को लगा देंवे, और ईश्वर की महानता व कार्यों का चिन्तन करते जाऐं आपार आनन्द की प्राप्ति होती है।

ईश्वर हमारा स्वाभाविक जन्म-जन्म का मित्र है

हमे हर पल स्परण रखना चाहिए ईश्वर हमारा स्वाभाविक मित्र है। हमने ही उसकी उपेक्षा कर रखी हैं, वह हमारी उपेक्षा कभी नही करता है। हम एक उसी ओर बढ़ने की चेष्टा तो करें फिर पता चलेगा वह हमारा स्वागत कैसे करता है। संसार के सम्बन्धी तो एक दिन छोडने पड़ते है, और संसार में हमारा संयोग होता है, जहां संयोग होता है वहां वियोग अवश्य होता हैं किन्तु ईश्वर से न कभी संयोग होता है न कमी वियोग होता है अपितु सदैव योग ही योग रहता है। इसीलिए मैने इस लेख का शीर्षक रखा है बढाऐं-ईश्वर से निकटता।

पता- गढनिवास मोहकमपुर
देहरादून उत्तराखण्ड
मो. : ९४११५१२०१९

आर्य समाज सांताक्रुज़
अपना ७४ वां वार्षिक महोत्सव
दि. २६,२७,२८ जनवरी को मनायेगा।
विद्वानोंको सम्मानित किया जायेगा।
आप अधिक से अधिक संख्या में पधारें।

पुरस्कारों का राष्ट्रीय स्वरूप

आर्य समाज का एक गौरवमय इतिहास है, किन्तु वर्तमान समय में शनैः शनैः यह स्थिति छिन्न भिन्न होती जा रही है। हमारे व्यक्तिगत् परिवार भी छोटे होते जा रहे हैं। इस कारण भय, अशान्ति और अविश्वास का वातावरण हमें कमजोर किये जा रहा है। सच तो यह है कि आज हम अपनी अपनी घर गृहस्थी के साधन जुटाने में इतने व्यस्त हो गये हैं कि जिससे हम अपने लिये भी समय नहीं निकाल पा रहे हैं और आज ऐसी स्थिति में हम निःस्वार्थ, सेवा भावी, विद्वान / संन्यासी / महात्मा से भी नहीं जुड़ पा रहे हैं जो हमें हमारे परिवारों से जुड़कर सही मार्गदर्शन एवं मानसिक शान्ति दिला सके। अस्तु !

सन् १९८५ में आर्य समाज सान्ताक्रुज ने इन्हीं भावनाओं को विकसित करने हेतु आर्य समाज की सेवा में समर्पित विद्वान् पं.युधिष्ठिर मीमांसक का अभिनन्दन किया। यह समारोह मुम्बई की सभी आर्य समाजों के द्वारा सम्मिलित रूप से मनाया गया था। उसी दिन से आर्य समाज सान्ताक्रुज के कर्मठ अधिकारियों ने यह निश्चय किया कि यह अभिनन्दन की परम्परा आगे बढायी जाये और इसीलिये एक स्थिर निधि का निर्माण किया गया जिसमें दानदाताओं ने खुलकर दान किया।

इस प्रकार सन् १९८६ से वेद वेदांग पुरस्कार आरम्भ किया गया। आज विभिन्न स्थिर निधियों के कारण हम १५ से अधिक विद्वानों का विभिन्न पुरस्कारों से अभिनन्दन कर पा रहे हैं। आज हम विद्वानों को सम्मान राशि रू. ३०००० से रू. ६०००० तक की ही दे पा रहे हैं जो आज के संदर्भ में पर्याप्त नहीं है। आर्य समाज के विद्वानों की बदौलत ही हमारा समाज जीवित रहेगा और हमारे परिवारों के बच्चों को हम आर्य समाज से जोडे रख सकेंगे। **अगले वर्ष आर्य समाज सान्ताक्रुज अपनी ७५ वीं वर्षगाठ व वार्षिकोत्सव मनाने ज़ा रहा है।**

इस उपलक्ष्य में हम इन पुरस्कारों की परम्परा को राष्ट्रीय स्तर पर मनाने की योजना के इच्छुक हैं। राष्ट्रीय स्तर पर एक समिति का गठन करना हमारा उद्देश्य है जिससे इस कार्य को और आगे बढ़ाया जाये। आपका सहयोग ही इसे सफल बनायेगा।इसके लिये हमें विश्वास है कि आप सभी आर्य जगत् के सदस्य जुडेंगे और अपनी सेवायें देकर इस संकल्प को पूरा करेंगे। हमारे पास राशि कम है परन्तु इरादे बुलन्द हैं। २७ वर्षों से आर्य समाज सान्ताक्रुज ने इस कार्य को संभाला है। अब आइये ! हम सब मिलके इस राष्ट्रीय स्तर के कार्यक्रम की परम्परा से जुड जायें। सही विद्वानों का चयन अधिकतम राशि को बढाना जिससे निस्वार्थ समर्पित विद्वानों का राष्ट्रीय स्तर पर सम्मान हो सके।

पुरस्कार समिति
श्री लालचन्द आर्य, श्री राजन बाहरी,
श्री दीपक पटेल, श्री संगीत आर्य

लघु-कथा

भाई हो भरत जैसा

डॉ. विनयकुमार 'विष्णुपुरी'

आज लेखक का बड़ा ही सुन्दर और अति प्रसन्नता का दिन हैं। लेखक के दोनों पुत्र सोनू, पोता-भास्करचन्द्र, विनी उर्फ ईसू शाम सात बजे लेखक के कक्ष में प्रवेश करते ही सामने आकर खड़ा हो गया था। कहा? पिताजी, दादाजी आप आजकल रोज-रोज छोटी-छोटी मनोरंजक कहानियाँ लिखते है, कई पत्र-पत्रिकाओं में मैं देखता हूँ कि आपकी कहानियों के साथ फोटो, पता-चलन्त दूरभाष-सं. भी छपा रहता है।

सोनू ने कहा, मैं, मेरे पुत्र और मेरे छोटे भाई ने आप से एक कहानी सुनने का मन बनाया है। आज आप का नाम कविता-पाठ में, और बारह जून बीस सौ पन्द्रह की संस्कार सारथी, दिल्ली की पत्रिका एवं हिन्दी की एक पुस्तक में 'दयालू शीलनाम' शीर्षक से छपा है, जिसे डाकिया दे गया है। मैंने उसे पढ़ा है और आप मुझे एक भी कहानी नहीं सुनाते हैं।

अच्छा बेटा, तुम एक कहानी आज सुन ही लों। इस कहानी को तुम अपने जीवन में जरूर इस्तेमाल कर देखना। तुम्हें क्या लाभ-हानि होती है। मैं समझता हूँ कि तूम्हें जरूर लाभ के सिवा कोई हानि न होगी।

मुँह लटकाए अयोध्या की ओर सुमंत लौट रहे हैं। लगता है, यह कुछ चुरा कर अपने घर वापस हो रहे हैं। रथ घोड़े के मन से रास्ते पर चल रही हैं। सुमंत का खाली सवारी देखी तो राज्यवासियो ने उन्हें घेर लिया, हमारे राम को तुम कहाँ छोड़ आये हो? राजमहल में। दशरथ ने प्रश्नों की बौछार कर दी, 'मेर राम कहाँ हैं। बेटी सीता कैसी है?' दशरथ बच्चे की भांति जोर-जोर से रोने लगे, बिलखने लगे। सुमंत ने आँसू बहाते-बहाते सारी बात कह डाली।

पुत्र-शोक से राजा दशरथ के प्राण-पखेरू उड़ गये। राम के वियोग में वे उसे कहाँ तक अपनी जर्जर देह पिंजरे में कैद रखते? भरत-शत्रुघ्न ननिहाल से बुलाये गये। भरत का आगमन सुनकर कैकेयी निहाल हो उठी। उसने सारी घटनाओं को हँसते-हँसते सुना दिया और कहा- 'बेटा, अब राज-सिंहासन पर बैठो। मैंने यह सब तुम्हारे लिए ही किया है।'

भरत को सुनते ही काठ मार गया। ये क्रूध होकर बोले, अरे नागिन? तूने यह क्या कर डाला? वर मॉगते समय तेरे मुँह में कीड़े क्यों नहीं पड़ गये? तुम मुझे जनमते ही जहर क्यों नहीं दे दिया था? कम से कम मेरे कारण मेरे पिता और भाभी की आज यह हालत न होती। भरत माँ कौशल्या के पास गये और उनसे लिप्ट कर रोने लगे, माँ भी पछाड़ खाकर गिर पड़ी? सारे राजमहल में शोक की लहर दौड़ पड़ी।

राजा दशरथ का अंतिम-संस्कार कर चतुरॅगिनी सेना, माताएँ, गुरू मंत्री, प्रजा-जन आदि सबको लेकर भरत राम को लौटाने चित्रकूट की ओर चल पड़े।

भरत-शत्रुघन ने राम लक्ष्मण की तरह ही बिल्कुल जोगिया वस्त्र पहने और बरगद के दूधा से शिर केश को जटा बनाकर पूरे समाज के साथ गंगा को पार किया। चित्रकूट निकट आ गये। भरत की सेना को देखकर सब पशु-पक्षी भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगे।

राम ने आकाश में धूल उड़ती देखी तो लक्ष्मण से इसका पता लगाने को कहा। ऊँचे पेड़ पर चढ़कर लक्ष्मण ने भरत को सेना सहित आते देख लिया वे राम से बोले, भैया! लगता है, भरत हमें जंगल में भी आराम से नहीं रहने देगा। आज मैं सब से बदला लेकर दिल की आग बुझाऊँगा। राम ने लक्ष्मण को समझाया और धीरज रखने की सलाह दी।

भरत आते ही राम के चरणों में गिर पड़े और फूट-फूट कर रोने लगे। राम ने भरत को उठाकर गले से लगा लिया। दोनों की आँखों से गंगा-यमुना प्रवाहित होने लगी। भरत ने सीता को प्रणाम किया और लक्ष्मण को गले से लगा लिया। फिर शत्रुघन, माताएँ, गुरू आदि भी सबसे मिले। राम पिता की मृत्यु का समाचार सुन हतप्रभ हो गये। शोक का समुद्र फिर लहरें मारने लगा।

दूसरे दिन भरत ने अपने एवं माँ के अपराधों की क्षमा माँगतें हुए राम से आयोध्या लौट चलने की प्रार्थना की। राम ने कहा, "भाई जो कुछ हुआ, उस में किसी का भी दोष नहीं है। सब कर्मो का फल है। तुम राज्य करो, मैं वन में रहूँगा। पिता का वचन सत्य सिद्ध हो, यही पुत्र का परम कर्तव्य है। सत्य ही मुझे सब वस्तुओं से अधिक प्रिय है।

भरत अपनी बात पर अड़े रहे, इधर राम भी लौटने को तैयार नहीं थे। सबने राम को खूब समझाया-बुझाया, परन्तु राम अपने निर्णय पर अडिग रहे। भरत ने देखा कि श्रीराम अयोध्या किसी भी तरह नहीं लौटेंगे तो उन्होंने कहा, आप अपनी पादुकाएँ मुझे दे दें। इन्हें सिंहासन पर विराजमान कर इन्ही से आज्ञा लेकर चौदह वर्ष तक राज-काज चलाऊँगा अगर आप चौदह वर्ष पूरा होते ही अयोध्या नहीं लौटे तो मैं चिता में कूदकर अपने प्राण दे दूँगा।

राम की खड़ाऊँ लेकर भरत अयोध्या वापस आए। उन्होंने सिंहासन पर राम की पादुकाओं को स्थापित किया और अयोध्या का सारा प्रबन्ध कर के नन्दीग्राम में मुनि वेश बनाकर रहने लगे।

समझे बेटा सोनू-मोनू और पोता भास्करचन्द्र विनीत ऊर्फ ईसू बाबू!

शीला भवन, शिवशक्ति नगर
बाजार समिती, पटना-८०० ००६
मो. : ९३०४ १२० ५७९

साहस

हारो मत, साहस करो? हारो न हिम्मत,
छोड़ो न साहस, लेकर हरि का नाम

डॉ. विनयकुमार 'विष्णुपुरी'

प्यारे भाई-बन्धु, आपने कभी चींटी देखी है, नहीं देखी है तो आप गौर फरमायेंगें। जमी पर, पेड़ पर, जंगल-झड़ियों में, जरूर कहीं न कहीं दिखाई पड़ जायेगी। वे एक हों झुंड के साथ एक सीधा में पॅक्तिबद्ध हो सेना की तरह अपने कार्य करती जरूर दिखई पड़ जायेगी। उन्हें पॅक्तिबद्ध होना किसने सिखाया? कहाँ उसने नियम का पालन करना! तो आप भी इन चींटीयों से जरूर सीख लें। जरा सोचें प्रकृति के इतने छोटे जीव कितने परिश्रमी हैं, आप देखते है चींटी कितनी छोटी होती हैं। छोटी-छोटी चींटियाँ एक साथ मिलकर कीड़े को अपने घर खाने के लिए ले जाती है। उनके इस काम में उन्हें-कई-कई और कभी-कभी पूरा दिन लग जाता है। उन्हें बहुत-सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। फिर भी , वे अपना कार्य पूरा करने के लिए सभी कठिनाइयों का सामना करती है।

आपको इस परिश्रमी चींटियों से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। आपको सारी कठिनाइयों को झेलते हुए भी अपने कार्य को पूरा करना चाहिए। आपको किसी कार्य को पूरा करने के लिए बार-बार प्रयत्न करना चाहिए। जो कुछ भी आप करते चाहे वह कितना भी कठिन कार्य क्यों न हो, आपको उसपर डटे रहना चाहिए। जब तक आपको उस कार्य में सफलता न मिले आपका साहस और दृढ़ निश्चय तुम्हें कार्य को पूरा करने में आपका मदद करेंगें। एक बात सदा याद रखो कि असफलता के डर से अपने-आपको कभी निरुसाहित मत करें। किसी काम को कठिन जानकर अधूरा मत छोड़े! रास्ते में पड़नेवाली विपत्तियों का सामना करो और अपने लक्ष्य की प्राप्ति हेतु सदा आगे बढ़ते रहो। यदि तुम पर्यत्न करते रहोगे तो तुम्हें सफलता अवश्य मिलेगी। आपको जीवन में अनेक उदाहरण सुनने को मिलेंगें। जिन्होंने लगातार परिश्रम के बल पर बड़े-से बड़े पद को भी हासिल कर लिया है। वर्षो से मनुष्य की आकांक्षा हिमालय के अन्तिम शिखर पर, जिस की ऊँचाई उनतीस हजार फीट है, चढ़ने की, पूरी की। बहुत-से असफल प्रयासों के बाद पर्वतारोहियों के एक दल ने सन् १९५३ में सर जॉन हन्ट के नेतृत्व में शिखर पर बहुँचने का पहला प्रयत्न किया।

पर्वतारोहियों के दो दल एवरेस्ट की साहसिक यात्रा के लिए चुने गये। पहला दल २८७२० फूट की ऊँचाई पर कठिनाइयों के बाबजूद पहुँच सका। शिखर से तीन हजार फुट नीचे उनकी ऑक्सीजन समाप्त हो गई। फलत: उन्हें विवश हो लौटना पड़ा दूसरे दल में तेनसिंह और हिलैरी थे। हिलैरी और तेनसिंह ने सुबह-सुबह ही सफलता प्राप्त करने का दृढ़ निश्चय कर शिखर पर चढ़ना प्रारम्भ कर दिया।

आरम्भ में मौसम अनुकूल था। परन्तु शीघ्र ही मौसम एकाएक बदलने लगा। भयानक हवा का बहना प्रारम्भ हो गया। फिर भी वे अनवरत अपने प्रयास में संलग्न रहें, वे निरुत्साहित नहीं हुए। शिखर पर पहुँचने का उनका निश्चय अटल था। धीरे-धीरे और अनेक कष्टों को झेलते हुए वे पर्वत पर चढ़ते गये। एक-एक मिनट एक-एक घंटे के समान प्रतीत हो रहा था। रास्ता भयानक था। परन्तु उन्होंने कभी हिम्मत नहीं हारी। अंत में २९ मई, १९५३ की सुबह के ११८/२ बजे वे दोनों संसार की सबसे ऊँची चोटी माउन्ट एवरेस्ट पर चढ़ने में सफल हो सके। सभी विघ्न - बाधाओं के बाबजूद सफलता को प्राप्त करने के दृढ़ निश्यय ने उन्हें संसार के सबसे उँचे शिखर पर पहुँचा दिया। उन के नाम सारे संसार में फैल गये। कोई भी कठिन से कठिन कार्य दृढ़ संकल्प और कठिन परिश्रम के बिना पूरा नही हो सकता किसी काम को पूरा करने के लिए आपमें दृढ़ निश्चय और मनोबल का होना आवश्यक है। यदि आप चाहते हैं कि जीवन में आपको सफलता हासिल हो तो प्रलोभन को अपने रास्ते में मत आने दो। अपने-आप को निराश मत करें। सदा प्रयत्नशील रहें। कठिन से कठिन बाधाओं में भी हिम्मत न हारें। सदा संघर्ष करते रहें।

शीला भवन, शिवशक्ति नगर
बाजार समिती, पटना-८०० ००६
मो. : 9304 120 579

सभी के साथ प्रेम तथा सहानुभूति

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

सर्वप्राणिषु बन्धुभूतः स्यात्।– चरक. सू. ८/१८

सब प्राणियों के साथ भाई के समान व्यवहार करना चाहिए।

तथा च सर्वभूतेषु वर्तितव्यं यथात्मनि।– महा. शा. १६७/६

समस्त प्राणियों के साथ अपने ही जैसा व्यवहार करना चाहिए।

वात्सल्यात्सर्वभूतेभ्यो वाच्याः श्रोत्रसुखा गिरः।
परितापोपघातश्च पारुष्यं चात्र गर्हितम् ।। - महा. शा. १९१/४

वाणी ऐसी बोलनी चाहिए जिसमें सभी प्राणियों के प्रति स्नेह भरा हो और जो सुनते समय कानों को प्रिय लगनेवाली हो। दूसरों को पीड़ा देना, उन्हें मारना और कटु वचन सुनाना- ये सब निन्दित कर्म हैं।

मूकाऽन्ध–बधिर–व्यङ्गा नोपहास्याः कदाचन।

गूँगे, अन्धे, बहरे तथा अपङ्ग (लूले-लंगड़े) लोगों का कभी उपहास (हँसी) नहीं करना चाहिए।

हीनाङ्गानतिरिक्ताङ्गान्विद्याहीनान्वयोऽधिकान्।
रूपद्रव्यविहीनाँश्च जातिहीनाँश्च नाक्षिपेत्।। -मनु. ४/१४१

हीन अङ्गवाले, अधिक अङ्गवाले, मूर्ख, बूढ़े, कुरूप, निर्धन तथा हीनजाति के मनुष्य को आक्षेपयुक्त (अन्धा, काना, लंगड़ा आदि) वचन नहीं बोलना चाहिए, उनका तिरस्कार=अपमान नहीं करना चाहिए।

प्रत्यक्षं च परोक्षं च परेषामाचरेत्प्रियम्।

प्रत्यक्ष और परोक्ष-दोनों प्रकार से दूसरों को प्रिय लगनेवाला आचरण करना चाहिए।

सर्वप्राणभृतां शर्म आशासितव्यमहरह उतिष्ठता चोपविशता च।

प्रतिदिन उठते और बैठते समय समस्त प्राणियों के मङ्गल की कामना करनी चाहिए।

सर्वेषां मङ्गलं भूयात्सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत्।। - गरुडपु. उ. ३५।५१

सबका कल्याण हो, सब सुखी हों, सभी अपने जीवन में भद्र= कल्याण-ही-कल्याण देखें, संसार में कोई भी दुःखी न हो (ऐसी प्रार्थना करनी चाहिए)।

आत्म–निर्माण

स्वयं वाजिंस्तन्वं कल्पयस्व स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व।
महिमा तेऽन्येन न सन्नशे।। - यजुः० २३/१५

हे शक्तिशालिन्! तू स्वयं अपने शरीर को सबल, दृढ़ और शक्तिशाली बना। तू स्वयं यज्ञ=श्रेष्ठकर्म कर, स्वयं परोपकार कर और स्वयं ही अपने भाग्य-निर्माण में जुट जा। तेरी महिमा, तेरा गौरव किसी दूसरे के द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता, तेरी महिमा और गौरव को दूसरा कोई नष्ट भी नहीं कर सकता।

तू अपनी शक्तियों को पहचान और घोषणापूर्वक कह-

अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः।
अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः।।

-अथर्व० ४/१३/६

मेरा यह (दाहिना) हाथ ऐश्वर्यशाली है और बायाँ हाथ, यह तो उससे भी अधिक ऐश्वर्यशाली है। मेरे दाहिने हाथ में हर प्रकार की ओषधियाँ हैं और बाएँ हाथ का तो स्पर्श=छूना ही कल्याणकारी है।

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः।
गोजिद् भूयासमश्वजिद् धनत्र्जयो हिरण्यजित्।।

- अथर्व० ७/५०/८

मेरे दाहिने हाथ में कर्म है और बाएँ हाथ में विजय। मैं गौओं और भूमियों का, घोड़ों और राष्ट्रों का विजेता बनूँ। मैं अपने कर्म, उद्योग और पुरुषार्थ से धन-सम्पत्ति का विजेता बनूँ।

पुरुषार्थ करो, आलस्य से दूर रहो, क्योंकि-

आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः।
नास्त्युद्यमसमो बन्धुः कृत्वा यं नावसीदति।। - नीतिश० ८३

आलस्य मनुष्य के शरीर में रहनेवाला बहुत बड़ा शत्रु है; अन्य शत्रु बाहर से आक्रमण करते हैं, यह अन्दर से आक्रमण करता है। उद्यम=पुरुषार्थ के समान दूसरा कोई बन्धु नहीं है। उद्योगी=पुरुषार्थी मनुष्य कभी दुःखी नहीं होता।

नालसाः प्राप्नुवनत्यर्थान् न क्लीबा नाभिमानिनः।
न च लोकरवाद्भीता न वै शश्वत् प्रतीक्षिणः।।

- महा. शा. १४०/२३

आलसी मनुष्य अपने अभीष्ट=मनोवांछित फलों को प्राप्त नहीं कर पाते। नपुंसक, अभिमानी, लोक-अपवाद से भयभीत और सदा अवसर की प्रतीक्षा करनेवाले भी अपने अभीष्ट को प्राप्त नहीं कर पाते।

विद्या शौर्यं च दाक्ष्यं च बलं धैर्यं च पञ्चमम्।
मित्राणि सहजान्याहुर्वर्तयन्तीह तैर्बुधाः।। - शुक्रनी० ४/१३

विद्या शूरवीरता=शीघ्रता से कार्य कर डालना, दक्षता=चतुरता, बल, धैर्यपूर्वक कार्य में लगे रहना-हिम्मत न हारना-ये पाँच बातें मनुष्य के सहज मित्र हैं, बुद्धिमान् लोग इनसे लाभ उठाते हैं।

अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति प्रज्ञा च कौल्यं च दमः श्रुतं च ।
पराक्रमाश्चाबहुभाषित च दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च ।।

-विदुरनीति १।१०४

बुद्धि, कुलीनता, दम=चञ्चल मन को वश में करना, श्रुत=श्रमण और अध्ययन, पराक्रम, मितभाषण (थोड़ा बोलना, मौन रहना) यथा- शक्ति दान देना और कृतज्ञता (दूसरे के उपकार को मानता, उसका बदला चुकाना)- ये आठ गुण मनुष्य को चमकाते हैं, उसे प्रसिद्ध करते हैं और उसके जीवन को उज्ज्वल बनाते हैं।

सावधान! दिन बीते जाते हैं-

स्त्रवन्ति न निवर्तन्ते स्त्रोतांसि सरितामिव।
आयुरादाय मर्त्यानां रात्र्यहनि पुनः पुनः।। -महा० शा० ३३१/५

नूतन निष्काम पत्रिका वर्ष-८ अंक-१२ मुम्बई दिसम्बर- २०१७ पृष्ठ-१६ मूल्य- रु. ९/-

पौष - २०७४ (२०१७) Post Date : 25-12-2017 MCN/136/2016-2018 MAHRIL 06007/31/12/18-TC पोष्ट आफिस : सांताक्रुज़ (प.)

आर्य समाज सान्ताक्रुज मुम्बई का मुखपत्र

संपादक : संगीत आर्य

मुद्रक एवं प्रकाशक : **चन्द्रपाल गुप्त द्वारा कृष्ण प्रिंटिंग प्रेस,** २६, मंगलदास रोड, मुंबई-२. से मुद्रित कराकर आर्य समाज भवन, वी. पी. रोड, (लिंकिंग रोड), सान्ताक्रुज़ (प.) मुंबई-४०० ०५४. से प्रकाशित किया। **दूरभाष : २६६० २८०० / २६६०२०७५**

प्रति

टिक

जैसे झरनों और नदियों का प्रवाह आगे की ओर ही बढ़ता चला जाता है, पीछे की ओर नहीं लौटता, वैसे ही दिन-रात भी मनुष्य की आयु को लेकर चले जाते हैं, लौटते नहीं हैं।

यावत्स्वस्थमिदं देहं यावन्मृत्युश्च दूरत:।

तावदात्महितं कुर्यात्प्राणान्ते किं करिष्यति।।

जब तक शरीर स्वस्थ है और मृत्यु दूर है, तभी तक आत्म-कल्याण कर लेना चाहिए, मरने पर क्या कर सकेगा?

उत्थावव्यं जागृतव्यं योक्तव्यं भूतिकर्मसु।

भविष्यातीत्ये मन: कृत्वा सततमव्यथै:।।

- मह० उद्यो० १३५/२६

'सफलता होगी ही'- मन में ऐसा दृढ़ विश्वास करके और निरन्तर दीनतारहित होकर तुझे उठना, सजाग होना और ऐश्वर्य की प्राप्ति करानेवाले कार्यों में लग जाना चाहिए।

परमेश्वर

जगतां यदि नो कर्त्ता कुलालेन विना घट:।

चित्रकारं विना चित्रं स्वयमेव भवेदिह ।।

यदि इस संसार का बनानेवाला कोई नहीं है तो कुम्हार के बनाये बिना घड़ा और चित्रकार के बनाये बिना चित्र अपने-आप ही बन जाना चाहिए।

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।- ऋ० १/१६४/४६

एक ही परमात्मा को विद्वान् लोग अनेक नामों से पुकारते हैं।

यस्य भूमिप्रमान्तरिक्षमुतोदरम्।

दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नम:।।

-अथर्व० १०।७।३२

पृथिवी जिस परमात्मा के पैरों के समान है, अन्तरिक्ष जिसका उदर (पेट) है, द्युलोक जिसका सिर है, ऐसे सबसे महान् परमेश्वर को बारम्बार नमस्कार है।

सर्वेन्द्रिय-गुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।

सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं बृहत्।। -श्वेता. उप. ३/१७

परमेश्वर सभी इन्द्रियों के गुणों का ज्ञान करनेवाला है, परन्तु सभी इन्द्रियों के गोलकों से रहित है। वह सबका स्वामी है, सबका शासक है। वह सबसे महान् है और सबका आश्रय है।

वेदाहमेतं पुरुष महान्तमादित्यवर्णं तमसा परस्तात्।

तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्य: पन्था विद्यतेऽयनाय।।

- यजु:० ३१।१८

मैं उस महापुरुष (ब्रह्म, परमेश्वर) को जानूँ, जो सूर्य के समान देदीप्यमान और अज्ञान-अन्धकार से सर्वथा रहित है। उसी को जानकर मनुष्य मृत्यु को भी लाँघ जाता है। उसे जाने बिना मृत्यु से छूटने का, संसार-सागर को तरने का, मोक्ष की प्राप्ति का और कोई उपाय नहीं है।

उप त्वाग्रे दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम्।

नमो भरन्त एमसि।।० ऋ १।१।७

हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर! हम उपासक प्रतिदिन प्रात: और सायं नमस्कार की भेंट लेकर तेरी ओर आ रहे हैं, तुझे ध्या रहे हैं, तेरी उपासना कर रहे हैं।

न तिष्ठति तु य: पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्।

स शूद्रवद् बहिष्कार्य: सर्वस्माद् द्विजकर्मण:।।

-मनु० २।१०३

जो द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) प्रात: और सायंकाल सन्ध्या-उपासना नहीं करता, वह शूद्र के समान सम्पूर्ण द्विजकर्मों से बहिष्कृत करने (निकाल देने) योग्य है।

ऋषयो दीर्घसन्ध्यत्वादीर्घमायुरवाप्नुयु:।

प्रज्ञां यशश्च कीर्तिं च ब्रह्मवर्चसमेव च ।। - मनु ४।९४

ऋषियों ने बहुत देर तक सन्ध्या (सन्ध्या में गायत्री का जप) करके लम्बी आयु, बुद्धि, कीर्ति, यश और ब्रह्मतेज को प्राप्त किया (अत: इन गुणों की कामनावाले मनुष्य को सन्ध्या करनी चाहिए)।

गायत्र्या: परमं नास्ति दिवि चेह च पावनम्।

हस्तत्राणप्रदा देवी पततां नरकार्णवे ।। -शंखस्मृ० १२।२५

लोक और परलोक में गायत्री से बढ़कर और कोई पवित्र करनेवाला साधन नहीं है। गायत्री नरकरूपी समुद्र में पड़े हुए मनुष्य का हाथ पकड़कर बचानेवाली है।

जिस गायत्री की इतनी महिमा है, वह मन्त्र यह है-

ओ३म्। भूर्भुव: स्व:।

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।

धियो यो न: प्रचोदयात्।।- यजु:० ३६।३

हे सर्वरक्षक! सच्चिदानन्दस्वरूप परमेश्वर! हम सर्वप्रकाशक, आनन्दप्रद और सर्व प्रेरक आपके उस वरण करने योग्य तेज का ध्यान करते हैं, उसे अपने जीवन में धारण करते है, जो हमारी बुद्धि और कर्मों को सन्मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करे, करता रहे।

❑❑❑